Drishti IAS

Mains MARATHON

(मुख्य परीक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण प्रश्न-उत्तर) 2024

इतिहास, कला एवं संस्कृति

Delhi

Drishti IAS,
641, Mukherjee Nagar,
Opp. Signature View
Apartment, New Delhi

New Delhi

Drishti IAS,
21, Pusa Road,
Karol Bagh
New Delhi

Uttar Pradesh

Drishti IAS,
Tashkent Marg,
Civil Lines, Prayagraj,
Uttar Pradesh

Rajasthan

Drishti IAS,
Tonk Road,
Vasundhra Colony,
Jaipur, Rajasthan

Madhya Pradesh

Drishti IAS,
Building No. 12, Vishnu Puri,
Main AB Road,
Bhawar Kuan, Indore,
Madhya Pradesh

इतिहास,कला एवं संस्कृति

Q1. विश्व पटल पर फ्राँसीसी क्रांति के महत्त्व का आकलन कीजिये। इसने आधुनिक इतिहास की दिशा को किस प्रकार परिवर्तित किया था? (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- फ्राँसीसी क्रांति का संक्षिप्त परिचय देते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- फ्राँसीसी क्रांति के महत्त्व की चर्चा कीजिये।
- फ्राँसीसी क्रांति के बाद आधुनिक इतिहास की दिशा में होने वाले परिवर्तनों पर चर्चा कीजिये।
- तदनुसार निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

फ्राँसीसी क्रांति (वर्ष 1789 से 1799 तक), फ्राँस में कट्टरपंथी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के उथल-पुथल की अवधि थी। इस दौरान देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रणालियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ-साथ व्यापक स्तर पर सांस्कृतिक और बौद्धिक परिवर्तन हुए थे। इस क्रांति का न केवल फ्राँस पर बल्कि शेष यूरोप और विश्व पर भी गहरा प्रभाव पड़ा था जिसने स्वतंत्रता, समानता और लोकतंत्र के लिये होने वाले अन्य आंदोलनों को प्रेरित किया था।

मुख्य भाग:

फ्राँसीसी क्रांति का महत्त्व:

- **क्रांतिकारी आदर्शों का प्रसार होना:**
  - फ्राँसीसी क्रांति ने पूरे यूरोप और अमेरिका में क्रांतिकारी आंदोलनों को प्रेरित करने के साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्शों का प्रसार किया था।
  - इसके द्वारा राजशाही और अभिजात वर्ग की मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती मिलने के साथ प्रतिनिधि सरकार और संवैधानिक अधिकारों की वकालत की गई थी।
- **राष्ट्रवाद का उदय होना:**
  - फ्राँसीसी क्रांति से राष्ट्रवाद एक शक्तिशाली राजनीतिक शक्ति के रूप में सामने आया।
  - इसने सामान्य समस्याओं से पीड़ित और एकीकृत राष्ट्रीय पहचान के रूप फ्राँसीसी लोगों को एक एकजुट किया, जिससे अंततः आधुनिक फ्राँसीसी राष्ट्र-राज्य का गठन हुआ था।
- **अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को पुनर्परिभाषित करना:**
  - फ्राँसीसी क्रांति द्वारा यूरोप की पारंपरिक शासन व्यवस्था को चुनौती मिलने के साथ युद्ध और संघर्ष हुए जिससे इस महाद्वीप को एक नया आकार मिला था।
  - इससे वियना कांग्रेस के गठन का मार्ग प्रशस्त हुआ था जिसका उद्देश्य यूरोप में शक्ति और स्थिरता के संतुलन को बहाल करना था।
- **मानवाधिकारों को बढ़ावा मिलना:**
  - फ्राँसीसी क्रांति से मानवाधिकारों की अवधारणा को बढ़ावा मिला, जो आधुनिक लोकतंत्र की आधारशिला बने।
  - इस क्रांति के दौरान अपनाई गई नागरिक अधिकारों की घोषणा ने व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता के सिद्धांत को स्थापित किया था।

फ्राँसीसी क्रांति के बाद आधुनिक इतिहास की दिशा में होने वाला परिवर्तन-

- **पुरानी व्यवस्था का अंत होना:**
  - फ्राँसीसी क्रांति से यूरोप की पुरानी राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर विराम लगा।
  - पुरानी शासन व्यवस्था (जो सामंतवाद, निरंकुश राजतंत्र और पादरियों के विशेषाधिकारों पर आधारित थी) को क्रांतिकारियों द्वारा समाप्त कर दिया गया था।
  - क्रांतिकारियों ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों की घोषणा की और एक नए लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की थी।
- **अन्य क्रांतियों का प्रेरित होना:**
  - फ्राँसीसी क्रांति का शेष यूरोप और विश्व पर गहरा प्रभाव पड़ा था। इसने अन्य क्रांतिकारी आंदोलनों को प्रेरित किया, जैसे लैटिन अमेरिका का स्वतंत्रता संघर्ष और 1848 की यूरोपीय क्रांति।
  - फ्राँसीसी क्रांति के विचारों ने आधुनिक लोकतंत्र, राष्ट्रवाद और मानवाधिकारों के विकास को भी प्रभावित किया था।
- **नई राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना होना:**
  - फ्राँसीसी क्रांति से नए राजनीतिक संस्थानों की स्थापना हुई जो संप्रभुता और प्रतिनिधि सरकार के सिद्धांतों पर आधारित थीं।
  - इस क्रांति के बाद के नेपोलियन युग में सिविल कोड और लीजन ऑफ ऑनर के रूप में नवीन विकास को देखा गया।

- **अन्य युद्धों और संघर्षों को नेतृत्व मिलना:**
  - फ्राँसीसी क्रांतिकारी युद्ध, यूरोपीय शक्तियों के खिलाफ फ्राँस द्वारा लड़े गए युद्धों की एक श्रृंखला थे।
  - इन युद्धों के परिणामस्वरूप फ्राँसीसी साम्राज्य का विस्तार हुआ, क्रांतिकारी आदर्शों का प्रसार हुआ और यूरोपीय शक्ति संतुलन अस्थिर हो गया था।

निष्कर्ष:

फ्राँसीसी क्रांति को आधुनिक इतिहास के एक ऐसे ऐतिहासिक घटनाक्रम के रूप में संदर्भित किया जाता है, जिसका विश्व पटल पर दूरगामी प्रभाव पड़ा था। इसने क्रांतिकारी आंदोलनों को प्रेरित किया, राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया, पारंपरिक सत्ता संरचनाओं को चुनौती दी तथा मानवाधिकारों और लोकतंत्र के आदर्शों को बढ़ावा दिया था। इसकी विरासत आज भी कई देशों की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं में देखी जा सकती है।

Q2. भारतीय समाज और संस्कृति पर भक्ति आंदोलन के प्रभाव की चर्चा कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- भक्ति आंदोलन का संक्षिप्त परिचय देते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- भक्ति आंदोलन के प्रभावों की विवेचना कीजिये।
- तदनुसार निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

भक्ति आंदोलन एक धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलन था। भक्ति की उत्पत्ति को वेदों में देखा जा सकता है लेकिन इसका वास्तविक विकास 7वीं ईस्वी के बाद हुआ था। इसकी शुरुआत दक्षिण भारत में शैव नयनारों और वैष्णव अलवारों द्वारा की गई थी, जिसका बाद में सभी क्षेत्रों में विस्तार हुआ था। इसका भारतीय समाज और संस्कृति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था।

मुख्य भाग:

भारतीय समाज और संस्कृति पर भक्ति आंदोलन का प्रभाव

- **सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव:**
  - भक्ति आंदोलन ने जाति व्यवस्था को चुनौती दी और सामाजिक समानता को बढ़ावा दिया।
  - इसके तहत हिंदू धर्म की पारंपरिक कर्मकांड प्रथाओं के इतर भगवान की भक्ति के महत्त्व पर जोर दिया गया था।
  - इसमें मध्यस्थ की आवश्यकता के बिना भगवान के साथ लोगों के प्रत्यक्ष जुड़ाव को प्रोत्साहित किया गया था।
  - भक्ति संतों ने अपने संदेश को संप्रेषित करने के लिये स्थानीय भाषाओं का उपयोग किया, जिससे क्षेत्रीय भाषाओं के प्रसार में मदद मिली थी।
  - भक्ति आंदोलन ने जाति, लिंग और धार्मिक सीमाओं को तोड़ते हुए लोगों में अपनेपन की भावना विकसित की थी।
- **राजनीतिक प्रभाव:**
  - भक्ति संतों ने शासक वर्ग की अन्यायपूर्ण प्रथाओं की आलोचना की थी, जिससे लोगों के मन में इनके प्रति प्रतिरोध की भावना विकसित हुई।
  - भक्ति आंदोलन ने भक्ति संतों के विचारों को आकार देने में मदद की, जिन्होंने क्षेत्रीय भाषाओं और साहित्य के विकास में योगदान दिया था।
- **आर्थिक प्रभाव:**
  - भक्ति आंदोलन ने उन लोगों के लिये आजीविका का एक वैकल्पिक स्रोत प्रदान किया जो जीविकोपार्जन की पारंपरिक व्यवस्था के अनुकूल नहीं थे।
  - भक्ति संत स्थानीय कला और शिल्प के संरक्षक थे, जिससे क्षेत्रीय कला और हस्तशिल्प को बढ़ावा देने में मदद मिली थी।
- **धार्मिक प्रभाव:**
  - भक्ति आंदोलन से हिंदू धर्म के तहत नए संप्रदायों और उप-संप्रदायों का उदय हुआ, जिससे एक विविध और बहुलवादी धार्मिक संस्कृति का विकास हुआ था।
  - इससे गुरु के विचार और गुरु-शिष्य परंपरा के पुनरुद्धार में मदद मिली थी।
  - भक्ति संतों ने क्षेत्रीय धार्मिक प्रथाओं और अनुष्ठानों के विकास में योगदान दिया था।

निष्कर्ष:

भक्ति आंदोलन का भारतीय समाज और संस्कृति पर दूरगामी प्रभाव पड़ा था। इसने भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिदृश्य को आकार देने में मदद की थी। यह आंदोलन आज भी भारत और विश्व के लोगों को प्रेरित करता है।

Q3. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रति तिलक और महात्मा गांधी के दृष्टिकोण में समानताओं और भिन्नताओं पर चर्चा कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- तिलक और गांधी के दृष्टिकोण को संक्षेप में समझाइए।
- दोनों नेताओं के दृष्टिकोण में समानताओं और भिन्नताओं पर प्रकाश डालिये।
- उचित निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

तिलक और गांधी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दो महत्त्वपूर्ण नेता थे जिन्होंने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से भारत को स्वतंत्रता दिलाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। इनके दृष्टिकोण में समानताएँ होने के साथ इनके तरीकों और विचारधाराओं में भिन्नताएँ भी थीं।

मुख्य भाग:

समानताएँ:

- तिलक और गांधी दोनों ही स्व-शासन के महत्त्व को समझने के साथ भारत को ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्त कराने में विश्वास करते थे।
- दोनों नेता स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये जन आंदोलनों की शक्ति में विश्वास करते थे। उन्होंने स्वतंत्रता संघर्ष में लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहित किया था।
- तिलक और गांधी दोनों ही ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार के विरोध के साधन के रूप में असहयोग और सविनय अवज्ञा के उपयोग में विश्वास करते थे।
- वे दोनों भारतीय संस्कृति और विरासत के महत्त्व में विश्वास करने के साथ इसे संरक्षित करने एवं बढ़ावा देने की आवश्यकता पर बल देते थे।

भिन्नताएँ:

- स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये यदि आवश्यक हो तो हिंसक साधनों के उपयोग में तिलक का विश्वास था। उनका मानना था कि स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने में बल का उपयोग उचित है। दूसरी ओर गांधी, अहिंसा में अधिक विश्वास रखते थे और विरोध तथा प्रतिरोध हेतु अहिंसक साधनों की वकालत करते थे।
- तिलक, कट्टर राष्ट्रवादी थे जो हिंदू धर्म और संस्कृति की प्रधानता में विश्वास करते थे। दूसरी ओर गांधी समग्र राष्ट्रवाद के विचार में विश्वास करते थे, जिसमें भारत के सभी समुदाय शामिल थे।
- स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में तिलक का दृष्टिकोण राजनीतिक सुधार पर अधिक केंद्रित था, जबकि गांधी का दृष्टिकोण अधिक समग्र था जिसमें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सुधार शामिल थे।
- तिलक शिक्षा के महत्त्व में विश्वास करते थे और जनता के बीच शिक्षा के प्रसार की वकालत करते थे। दूसरी ओर गांधी, सभी के लिये साक्षरता और बुनियादी शिक्षा के महत्त्व में विश्वास करने के साथ कताई और बुनाई जैसे व्यवहारिक कौशल की आवश्यकता पर भी बल देते थे।

निष्कर्ष:

बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गांधी का ब्रिटिश शासन से भारत को स्वतंत्रता दिलाने का साझा लक्ष्य था लेकिन उनके दृष्टिकोण अलग थे। तिलक, उग्रवादी राष्ट्रवाद के पक्षधर थे लेकिन गांधी ने अहिंसक प्रतिरोध को प्राथमिकता देते हुए स्वतंत्रता की अधिक व्यापक धारणा पर बल दिया था। दोनों ही नेताओं ने भारतीय लोगों को संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ अंतत: भारत को आजादी दिलाने में काफी योगदान दिया था।

Q4. ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के विशिष्ट संदर्भ में, 18वीं शताब्दी के भारत के राजनीतिक परिदृश्य को आकार देने में कर्नाटक युद्धों की भूमिका पर चर्चा कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- कर्नाटक युद्धों की व्याख्या करते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- संक्षेप में तीन कर्नाटक युद्धों का वर्णन करने के साथ बताइए कि उन्होंने किस प्रकार उस समय की राजनीति को आकार दिया था।
- तदनुसार निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

दक्षिण भारत में 18वीं शताब्दी में हुए कर्नाटक युद्धों का इस क्षेत्र के राजनीतिक परिदृश्य पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था। ये युद्ध मुख्य रूप से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी और आर्कोट के नवाब तथा मराठों सहित विभिन्न स्थानीय शक्तियों के बीच लड़े गए सैन्य संघर्षों की एक श्रृंखला थे।

मुख्य भाग:

- **प्रथम कर्नाटक युद्ध (1746-1748):**
  - यह उत्तराधिकार के ऑस्ट्रियाई युद्ध के कारण यूरोप में होने वाले एंग्लो-फ्राँसीसी युद्ध का विस्तार था।
  - यह युद्ध फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच हुआ था।
  - यह ऐक्स-ला-चैपल की संधि पर हस्ताक्षर के साथ समाप्त हुआ था।
- **दूसरा कर्नाटक युद्ध (1749-1754):**
  - हैदराबाद के निज़ाम और कर्नाटक के नवाब के पदों के लिये विभिन्न दावेदारों के बीच यह युद्ध हुआ था; प्रत्येक दावेदार को ब्रिटिश या फ्राँस द्वारा समर्थन दिया जा रहा था।
  - पांडिचेरी की संधि के साथ यह युद्ध समाप्त हुआ था जिसने फ्राँसीसी की क्षेत्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को सीमित कर दिया था।
- **तीसरा कर्नाटक युद्ध (1757-1763):**
  - काउंट डी लाली और सर आयर कूट के नेतृत्व में क्रमश: फ्रेंच और ब्रिटिशों के बीच यह युद्ध हुआ था।

- इसमें ब्रिटिश विजयी हुए जिसकी परिणति भारत से फ्राँसीसियों की वापसी और ब्रिटिश प्रभुत्व में वृद्धि के रूप में हुई थी।
- वर्ष 1763 की पेरिस संधि द्वारा यह युद्ध औपचारिक रूप से समाप्त हुआ था।

कर्नाटक युद्धों ने 18वीं सदी के भारत के राजनीतिक परिदृश्य को किस प्रकार आकार दिया?

- इन युद्धों के बाद, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी प्रमुख क्षेत्रों और व्यापार मार्गों पर नियंत्रण प्राप्त करने के बाद भारत में प्रमुख यूरोपीय शक्ति के रूप में उभरी।
  - तीसरे कर्नाटक युद्ध से फ्राँसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी कमज़ोर हुई जिससे इसके प्रभाव में गिरावट आने के साथ कुछ क्षेत्रों में इसका प्रभाव समाप्त हो गया।
- कर्नाटक, मैसूर और हैदराबाद जैसे भारतीय राज्य यूरोपीय शक्ति संघर्ष में उलझ गए। जिससे उनके संसाधनों और सेना पर विपरीत प्रभाव पड़ने के साथ उनकी राजनीतिक स्थिरता कमज़ोर हुई।
- कर्नाटक युद्धों में ब्रिटिश जीत से भारत में इसके प्रभुत्व का मार्ग प्रशस्त हुआ था।
- मराठा साम्राज्य ने कर्नाटक युद्धों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इन युद्धों ने उन्हें अपने पारंपरिक क्षेत्रों से परे अपना प्रभाव बढ़ाने में मदद की थी।

निष्कर्ष:

कर्नाटक युद्धों ने राजनीतिक परिदृश्य को नया रूप दिया था जिसमें ब्रिटिश प्रमुख यूरोपीय शक्ति के रूप में उभरे तथा इससे भविष्य के औपनिवेशिक शासन के लिये आधार तैयार हुआ था। इसमें फ्राँसीसियों को असफलताओं का सामना करना पड़ा और भारतीय शक्तियाँ भी कमजोर हुई थीं इससे अंतत: भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का मार्ग प्रशस्त हुआ था।

Q5. भारतीय मंदिर परंपरा में चौसठ योगिनी वास्तुकला के महत्त्व की चर्चा कीजिये। इस वास्तुकला से तत्कालीन समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक पहलू किस प्रकार परिलक्षित होते हैं? (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- परिचय: चौसठ योगिनी वास्तुकला और इसकी मुख्य विशेषताओं को परिभाषित कीजिये।
- मुख्य भाग: चौसठ योगिनी वास्तुकला के महत्त्व की व्याख्या करते हुए बताइये कि इससे उस समय के सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक पहलू किस प्रकार परिलक्षित होते हैं।
- निष्कर्ष: मुख्य बिंदुओं को बताते हुए निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

चौसठ योगिनी वास्तुकला 9वीं और 11वीं शताब्दी के दौरान निर्मित मंदिर वास्तुकला की एक विशिष्ट शैली है। इन मंदिरों में 64 योगिनियों (योग करती हुई महिलाओं) के संकुल होने से इन्हें चौसठ योगिनी मंदिर कहा जाता है। ये मंदिर आमतौर पर शिव या भैरव को समर्पित होते हैं जिन्हें मंदिर परिसर के केंद्र में स्थापित किया जाता है। इन योगिनियों को शक्तिशाली दिव्य स्त्री स्वरूप में दर्शाया गया है जो अक्सर तांत्रिक प्रथाओं और अनुष्ठानों से जुड़ी प्रतीत होती हैं।

मुख्य भाग:

चौसठ योगिनी वास्तुकला का महत्त्व:

भारतीय मंदिर परंपरा में चौसठ योगिनी वास्तुकला का महत्त्व ब्रह्मांडीय ऊर्जा और शिव तथा शक्ति के बीच गतिशील संबंधों के प्रतिनिधित्व में निहित है। इन मंदिरों का गोलाकार आकार समय की चक्रीय प्रकृति और लौकिक व्यवस्था का प्रतीक है। इन योगिनियों को शक्ति की अभिव्यक्ति के रूप में दिखाया गया है। इन योगिनियों से मानव व्यक्तित्व, भावनाओं, इच्छाओं और शक्तियों के विभिन्न पहलुओं का भी प्रतिनिधित्व होता है।

इन योगिनियों की पूजा द्वारा भक्त आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने के क्रम में अपने आंतरिक और बाहरी स्तर पर सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

चौसठ योगिनी वास्तुकला उस युग (जिसमें इसे बनाया गया था) की कई सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक पहलुओं को दर्शाती है जिससे उस समय की प्रचलित मान्यताओं, प्रथाओं और सामाजिक गतिशीलता के बारे में अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है जैसे:

- **देवी पूजा:** चौसठ योगिनी मंदिर उस युग के दौरान देवी पूजा का परिचायक हैं और यह मंदिर देवी दुर्गा की 64 महिला अनुयायियों को समर्पित हैं, जिन्हें योगिनियों के रूप में जाना जाता है। इन शक्तिशाली प्रतिमाओं द्वारा दिव्य शक्ति के रूप में देवी की शक्ति की अवधारणा पर जोर देने के साथ इनकी आध्यात्मिक शक्ति और प्रभाव को महत्त्व दिया गया है।
- **योगिक और तांत्रिक प्रभाव:** इन योगिनियों को योग मुद्राओं में दर्शाया गया है, जो उस समय की योगिक और तांत्रिक परंपराओं को दर्शाती हैं। उस दौरान योग और ध्यान को आध्यात्मिक ज्ञान तथा श्रेष्ठता प्राप्त करने के साधन के रूप में देखा जाता था।
- **सादगी और तपस्या:** चौसठ योगिनी मंदिर सादगी और तपस्वी स्थापत्य शैली के लिये प्रसिद्ध हैं। पहले के समय की मंदिर संरचनाओं की तुलना में इन मंदिरों का डिज़ाइन अधिक विशिष्ट है। अलंकृत संरचनाओं एवं अत्यधिक सजावट की अनुपस्थिति के कारण इनसे पूजा के अधिक सरलीकृत और आध्यात्मिक रूप के प्रति केंद्रित दृष्टिकोण की ओर बदलाव का संकेत मिलता है।

- **वृत्ताकार वास्तुकला का प्रतीक:** चौसठ योगिनी मंदिरों की वृत्ताकार या अष्टकोणीय योजना ब्रह्मांड के लौकिक रूप का प्रतिनिधित्व करती है, जो समय की चक्रीय प्रकृति में विश्वास को दर्शाती है। यह चक्र ऊर्जा के निरंतर प्रवाह का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक गहरी आध्यात्मिक समझ और ब्रह्मांडीय क्रम और संतुलन में निहित विश्वदृष्टि का प्रतीक है।

निष्कर्ष:

भारतीय मंदिर परंपरा में चौसठ योगिनी वास्तुकला का अत्यधिक महत्त्व है। इसका अनोखा गोलाकार या अष्टकोणीय लेआउट, योगिनी देवी पर केंद्रित विषय-वस्तु एवं उस काल (जिसमें इसे बनाया गया था) के सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक पहलुओं का प्रतिबिंब जैसी विशेषताएँ इसे एक विशिष्ट और प्रभावशाली स्थापत्य शैली बनाती हैं। चौसठ योगिनी वास्तुकला का प्रभाव बाद की मंदिर शैलियों में देखा जा सकता है।

Q6. द्रविड़ मंदिर वास्तुकला की विशिष्ट विशेषताओं पर प्रकाश डालिये और इस स्थापत्य शैली को आकार देने में चोल राजवंश द्वारा निभाई गई महत्त्वपूर्ण भूमिका का विश्लेषण कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- परिचय: द्रविड़ वास्तुकला शैली के बारे में बताते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये
- मुख्य भाग: द्रविड़ वास्तुकला शैली की विशेषताओं को बताते हुए इसमें चोल राजवंश के योगदान का उल्लेख कीजिये।
- निष्कर्ष: मुख्य बिंदुओं को सारांशित करते हुए निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

द्रविड़ मंदिर वास्तुकला शैली का विकास भारत के दक्षिणी क्षेत्रों (मुख्य रूप से तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल और आंध्र प्रदेश राज्यों) में हुआ है। इसकी कुछ विशेषताएँ इसे भारत की अन्य स्थापत्य शैली से अलग करती हैं। चोल राजवंश (जिसने 9वीं से 13वीं शताब्दी तक दक्षिणी भारत के काफी बड़े हिस्से पर शासन किया था) ने द्रविड़ मंदिर वास्तुकला शैली को आकार देने और लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

मुख्य भाग:

द्रविड़ मंदिर वास्तुकला शैली की विशेषताएँ:

- **विमान:** द्रविड़ मंदिर वास्तुकला के प्रमुख तत्त्वों में से एक विमान है, जिसे गोपुरम या शिखर के रूप में भी जाना जाता है। यह मंदिर के गर्भगृह के ऊपर विशाल, पिरामिड जैसी संरचना के रूप में होता है। विमान आमतौर पर जटिल नक्काशी, मूर्तियों से सुशोभित होने के साथ कई संस्तरों वाले होते हैं।
- **मंडप:** द्रविड़ मंदिरों में स्तंभों वाले कक्ष होते हैं जिन्हें मंडप कहा जाता है। इनका उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों, सभाओं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों सहित विभिन्न उद्देश्यों के लिये किया जाता था। मंडपों के खंभे और छतों पर हिंदू पौराणिक कथाओं के दृश्यों को प्रदर्शित करने वाली जटिल नक्काशी देखने को मिलती है।
- **शिखर:** शिखर नुकीली, पिरामिडनुमा छत के रूप में विमान के शीर्ष पर होते हैं। यह अक्सर मूर्तियों और कलशों जैसे सजावटी तत्त्वों से सुशोभित होता है।
- **गोपुरम:** द्रविड़ मंदिरों को बड़े प्रवेश द्वारों के लिये जाना जाता है, जिन्हें गोपुरम कहा जाता है। ये विशाल संरचनाएँ देवी-देवताओं, पौराणिक कथाओं एवं हिंदू महाकाव्यों के दृश्यों को चित्रित करने वाली आकृतियों से अलंकृत होती हैं।
- **गोष्टम:** गोष्टम, गर्भगृह की बाहरी दीवारों पर उकेरे गए देवता को कहा जाता है। ये आमतौर पर मंदिर के मुख्य देवता से संबंधित होते हैं जो भगवान् के विभिन्न पहलुओं या रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

द्रविड़ मंदिर वास्तुकला को आकार देने में चोल राजवंश की भूमिका:

- **संरक्षण और निर्माण:** चोल राजवंश ने कई भव्य मंदिरों को संरक्षण देने के साथ इनके निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस प्रकार इस राजवंश ने द्रविड़ मंदिर वास्तुकला के विकास और प्रसार में योगदान दिया था। चोल वंश के शासकों, विशेष रूप से राजराज चोल I और उनके उत्तराधिकारी राजेंद्र चोल I ने, बृहदेश्वर मंदिर और गंगईकोंडचोलपुरम मंदिर जैसे विशाल मंदिरों का निर्माण कराया था।
- **वास्तुकला शैली में नवाचार लाना:** चोल राजवंश ने वास्तुकला शैली से संबंधित कई नवाचारों को अपनाया था जो द्रविड़ मंदिर वास्तुकला की पहचान बन गए। उन्होंने बड़ी और अधिक विस्तृत संरचनाओं को शुरू करके विमानों की अवधारणा का विस्तार किया था। राजराज चोल I द्वारा निर्मित बृहदेश्वर मंदिर, चोल राजवंश की वास्तुकला शैली की प्रतिभा का परिचायक है। एकाश्म ग्रेनाइट चट्टान से निर्मित इसका विशाल विमान, अपने समय की महत्त्वपूर्ण विनिर्माण उपलब्धियों में से एक है।
- **मूर्तिकला पर बल:** चोल, कला के महान संरक्षक थे और उन्होंने द्रविड़ मंदिरों में जटिल मूर्तियों और नक्काशियों के प्रसार पर बल दिया था। उन्होंने अपने मंदिरों में विभिन्न देवताओं के साथ पौराणिक दृश्यों से संबंधित चित्रण को प्रोत्साहित किया था। चोल मंदिरों से संबंधित मूर्तियों (जैसे नटराज) से असाधारण कलात्मकता और भक्ति भाव का प्रदर्शन होता है।

- **मंदिर प्रशासन और अनुष्ठान:** चोल राजवंश ने एक सुव्यवस्थित मंदिर प्रशासन प्रणाली की स्थापना की थी। उन्होंने द्रविड़ मंदिरों से जुड़ी स्थापत्य और सांस्कृतिक परंपराओं को संरक्षित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

निष्कर्ष:

द्रविड़ मंदिर वास्तुकला शैली की विमान, मंडप, गोपुरम, जटिल नक्काशी और मूर्तियों के रूप में प्रमुख विशेषताएँ हैं। चोल राजवंश ने मंदिरों के संरक्षण, भव्य मंदिरों के निर्माण, स्थापत्य शैली में नवाचार, मूर्तिकला को प्रोत्साहन देने एवं एक व्यवस्थित मंदिर प्रशासन की स्थापना के माध्यम से इस वास्तुकला शैली को प्रभावित किया था। इस वंश के योगदान ने द्रविड़ मंदिर वास्तुकला को आकार देने तथा लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

Q7. भारत में इस्लामी शासन के आगमन के साथ ही भारत की तत्कालीन वास्तुकला किस प्रकार विकसित हुई थी? (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- परिचय: इंडो-इस्लामिक वास्तुकला को बताते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- मुख्य भाग: इस्लामिक शासन के आगमन के दौरान तत्कालीन भारतीय वास्तुकला की विशेषताओं को बताते हुए इसके बाद इसमें आए परिवर्तनों का संक्षेप में उल्लेख कीजिये।
- निष्कर्ष: मुख्य बिंदुओं को बताते हुए निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

भारत में इस्लामी शासन के आगमन (13वीं शताब्दी में) का तत्कालीन वास्तुकला परिदृश्य पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था। इससे इस्लामी प्रभावों के साथ स्वदेशी भारतीय स्थापत्य परंपराओं का मिश्रण सामने आया। इससे सांस्कृतिक और धार्मिक समन्वय के प्रतीक के रूप में इंडो-इस्लामिक वास्तुकला का उदय हुआ था।

मुख्य भाग:

तत्कालीन भारतीय वास्तुकला:
- बल्ली और शहतीर वाली अनुप्रस्थ संरचनाओं का निर्माण।
- पत्थर का उपयोग।
- इमारतों में शीर्ष संरचना के रूप में शिखर/विमान का निर्माण।
- सहायक संरचनाओं जैसे गोपुरम, तोरण आदि का निर्माण।

भारत में इस्लामी शासन के आगमन के बाद की वास्तुकला:
- **इस्लामी वास्तुकला का प्रभाव:**
  - **नई निर्माण तकनीकों की शुरुआत:**
    - स्थापत्य में मेहराबों एवं गुंबदों का अनुप्रयोग। उदाहरण के लिये बुलंद दरवाजा के भव्य मेहराब।
    - सामग्री के रूप में ईंट और चूना मोर्टार का उपयोग होना।
  - **नवीन कलात्मक तत्वों का समावेश:**
    - **जटिल ज्यामितीय** पैटर्न का उपयोग किया जाना।
    - **पुष्प रूपांकनों के साथ अरबेस्क डिज़ाइन** का उपयोग किया जाना।
    - कीमती धातुओं और पत्थरों को जड़ने के लिये **पिएट्रा ड्यूरा** तकनीक का उपयोग किया जाना। उदाहरण के लिये **ताजमहल** में पिएट्रा ड्यूरा का उपयोग।
  - **इस्लामी धार्मिक संरचनाओं का निर्माण:**
    - मीनारों और मेहराब जैसी विशेषताओं वाली मस्जिदों का निर्माण। उदाहरण के लिये, कुव्वत उल इस्लाम मस्जिद।
    - इस्लामिक शासकों और संतों के मकबरों का निर्माण होना।
- **स्वदेशी भारतीय वास्तुकला के साथ मिश्रित होना:**
  - **हिंदू और इस्लामी तत्वों का एकीकरण:**
    - **स्थानीय सामग्रियों** और निर्माण तकनीकों का उपयोग किया जाना।
    - वास्तुशिल्प डिज़ाइनों में **हिंदू और इस्लामी सजावट के तत्वों का सम्मिश्रण होना।**
  - **स्थापत्य शैली का संश्लेषण:**
    - इंडो-इस्लामिक विशेषताओं वाले महलों और किलों का निर्माण होना।
    - चारबाग शैली में इंडो-इस्लामिक उद्यानों का विकास होना। उदाहरण के लिये लोधी उद्यान, आरामबाग आदि।
- **शहरी नियोजन पर प्रभाव:**
  - **इस्लामिक स्थापत्य की विशेषताओं वाले शहरों का विकास:**
    - **केंद्र में मस्जिदों और बाज़ारों के साथ** नियोजित शहरों की स्थापना।
    - उदाहरण के लिये, **फतेहपुर सीकरी और तुगलकाबाद** जैसे शहरों का निर्माण।

निष्कर्ष:

इस्लामी वास्तुकला के मिश्रण से **मौजूदा भारतीय वास्तुकला में कई तत्त्वों** का समावेश हुआ। भारत में इस्लामी शासन के आगमन के परिणामस्वरूप स्थापत्य शैली के साथ नियोजित शहरों विकास हुआ था।

इस्लामी प्रभावों के साथ स्वदेशी भारतीय परंपराओं के संलयन से अनूठी वास्तुशिल्प का उदय हुआ जिससे उस समय की सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता प्रदर्शित हुई। **हिंदू और इस्लामी तत्त्वों के एकीकरण से समाज में सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व का विकास हुआ था, जो कुतुबमीनार और जामा मस्जिद जैसी संरचनाओं से स्पष्ट होता है।** इस वास्तुशिल्प विकास से न केवल भौतिक परिदृश्य में परिवर्तन हुआ

बल्कि इसने भारत के सांस्कृतिक और सामाजिक ताने-बाने को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ **गंगा-जमुनी तहज़ीब** को जन्म दिया।

Q8. वर्ष 1920 में महात्मा गांधी द्वारा शुरू किये गए असहयोग आंदोलन की मुख्य विशेषताएँ और उपलब्धियाँ क्या थीं? इसका भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर क्या प्रभाव पड़ा था? (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- असहयोग आंदोलन का संक्षिप्त परिचय देते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- इसकी विशेषताएँ एवं उपलब्धियाँ बताइये।
- बताइये कि इसका भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर क्या प्रभाव पड़ा था।
- तदनुसार निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

असहयोग आंदोलन वर्ष 1920 में महात्मा गांधी द्वारा शुरू किया गया एक राजनीतिक अभियान था, जिसका उद्देश्य भारतीयों द्वारा ब्रिटिश सरकार को किये जाने वाले सहयोग को वापस लेना और उसे स्वशासन या स्वराज देने के लिये सहमत करना था।

मुख्य भाग:

विशेषताएँ:
- यह सत्य, अहिंसा और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों पर आधारित था।
  - इसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार की संस्थाओं, वस्तुओं और सेवाओं का बहिष्कार करके ब्रिटिश सत्ता के प्रभाव को कमजोर करना था।
- इसमें भारतीय समाज के विभिन्न वर्ग जैसे छात्र, शिक्षक, वकील, किसान, श्रमिक, व्यापारी आदि शामिल हुए थे।
  - इसे विभिन्न राजनीतिक दलों और समूहों जैसे कॉन्ग्रेस, खिलाफत समिति आदि का भी समर्थन प्राप्त था।
- **इसके निम्नलिखित कार्यक्रम थे:**
  - अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त उपाधियों और सम्मानों को त्यागना।
  - सरकारी स्कूलों, कॉलेजों, न्यायालयों और कार्यालयों का बहिष्कार करना।
  - विदेशी वस्त्र, शराब तथा अन्य वस्तुओं का बहिष्कार करना।
  - करों का भुगतान न करना।
- इसमें हड़ताल, प्रदर्शन, धरना एवं स्वदेशीकारण को बढ़ावा देने के रूप में विरोध और प्रतिरोध को देखा गया।
  - इसमें समानांतर संस्थाओं और आंदोलनों का भी उदय हुआ था जैसे राष्ट्रीय स्कूल, कॉलेज, पंचायतें, खादी समितियाँ आदि।

उपलब्धियाँ:
- यह ऐसा पहला राष्ट्रव्यापी जन आंदोलन था जिसने विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों और वर्गों के लाखों भारतीयों को एकजुट किया।
  - इसने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ लोगों में एकता और एकजुटता की भावना पैदा की।
- इसके द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन की वैधता और विश्वसनीयता को चुनौती मिली।
  - इससे ब्रिटिश प्रशासन और अर्थव्यवस्था की कमजोरियाँ उजागर हुईं।
  - इससे भारतीय लोगों की राजनीतिक चेतना और आकांक्षाओं को प्रेरणा मिली।
- इसने भारत के विभिन्न हिस्सों में कई अन्य आंदोलनों को प्रेरित किया जैसे सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन आदि।
  - इसने विश्व भर में विभिन्न उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलनों को भी प्रभावित किया।
- इसने अंग्रेजों को भारत के प्रति अधिक सौहार्दपूर्ण और सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाने के लिये मजबूर किया था।

निषकर्ष:

असहयोग आंदोलन भारत के स्वतंत्रता संग्राम की एक प्रमुख ऐतिहासिक घटना थी। इसमें प्रतिरोध के तरीकों के रूप में नरमपंथी से गरमपंथी विचारधारा की ओर बदलाव को देखा गया। इसके अंतर्गत दमनकारी शासन के खिलाफ अहिंसक जन आंदोलन की शक्ति और क्षमता का भी प्रदर्शन हुआ।

Q9. स्वदेशी आंदोलन के उद्देश्यों एवं तरीकों को बताते हुए भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन पर इसके प्रभावों का विश्लेषण कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- परिचय: स्वदेशी आंदोलन का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
- मुख्य भाग: स्वदेशी आंदोलन के मुख्य उद्देश्यों एवं इसमें प्रयुक्त विधियों को बताते हुए इसके प्रभावों की चर्चा कीजिये।
- निष्कर्ष: मुख्य बिंदुओं को संक्षेप में बताने के साथ स्वदेशी आंदोलन के महत्त्व को बताते हुए निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

स्वदेशी आंदोलन, आत्मनिर्भरता पर आधारित आंदोलन था जो भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का प्रमुख भाग था। इसने भारतीय राष्ट्रवाद के

विकास में प्रमुख योगदान दिया था। इसकी शुरुआत वर्ष 1905 के बंगाल के विभाजन के फैसले की प्रतिक्रिया के रूप में हुई थी। विभाजन के फैसले को राष्ट्रवादी आंदोलन/स्वतंत्रता आंदोलन को कमजोर करने के क्रम में फूट डालो और राज करो की नीति के रूप में देखा गया था।

मुख्य भाग:

स्वदेशी आंदोलन के मुख्य उद्देश्य:

- विदेशी वस्तुओ (विशेषकर ब्रिटिश निर्मित कपड़े और नमक का बहिष्कार करना) और इसके स्थान पर घरेलू उत्पादों का उपयोग करना।
- स्वदेशी उद्योगों, शिक्षा, साहित्य, कला एवं संस्कृति को बढ़ावा देना।
- भारतीयों में एकता, आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता की भावना को बढ़ावा देना।

स्वदेशी आंदोलन में प्रयुक्त विधियाँ:

- स्वदेशी और बहिष्कार का संदेश प्रसारित करने हेतु सार्वजनिक बैठकों, रैलियों, जुलूस और प्रदर्शन का सहारा लेना।
- जनता को संगठित करने और सामाजिक सेवाएँ प्रदान करने हेतु बारीसाल में स्वदेश बांधव समिति जैसे संगठनों का गठन करना।
- एकजुटता हेतु महाराष्ट्र में शिवाजी और गणपति के प्रतीकों पर आधारित त्योहारों का आयोजन किया जाना।
- वैकल्पिक शिक्षा प्रदान करने के लिये राष्ट्रीय स्कूल और कॉलेज का निर्माण किया जाना जैसे कि नेशनल कॉलेज ऑफ़ बंगाल, जिसके प्रिंसिपल अरबिंदो थे।
- स्वदेशी उद्योगों को समर्थन देने के लिये स्वदेशी उद्यमों (जैसे कपड़ा मिलें, साबुन कारखाने, बैंक और बीमा कंपनियों आदि) को प्रोत्साहन देना।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पर स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव:

- इससे स्वतंत्रता आंदोलन के लिये व्यापक जन आधार तैयार हुआ और इसमें विभिन्न क्षेत्रों, वर्गों, जातियों और धर्मों के लोग शामिल हुए।
- इससे ब्रिटिशों के आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व को चुनौती मिली तथा स्व-शासन या स्वराज के अधिकार को प्रोत्साहन मिला।
- इससे भारतीय उद्योगों, शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के विकास को प्रोत्साहन मिलने के साथ राष्ट्रीय पहचान की भावना को बल मिला।
- इससे होमरूल आंदोलन एवं असहयोग आंदोलन जैसे अन्य आंदोलनों को प्रेरणा मिली, जिनमें स्वदेशी और बहिष्कार के समान रणनीतियों को अपनाया गया।
- इस आंदोलन में बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपत राय जैसे नए नेताओं का भी उदय हुआ, जिन्होंने आगे चलकर स्वतंत्रता संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

निष्कर्ष:

स्वदेशी आंदोलन का उद्देश्य आत्मनिर्भरता एवं एकजुटता को बढ़ावा देने के साथ बहिष्कार जैसे तरीकों को अपनाना एवं स्वदेशी उद्योगों को बढ़ावा देना था। इससे ब्रिटिशों के आर्थिक प्रभुत्व को चुनौती मिली, राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन मिला और इसके बाद होने वाले राष्ट्रवादी आंदोलनों का आधार तैयार हुआ।

Q10. भक्ति साहित्य की प्रकृति और भारतीय संस्कृति में इसके योगदान का मूल्यांकन कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- भक्ति साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- भक्ति साहित्य की प्रकृति और भारतीय संस्कृति में इसके योगदान की व्याख्या कीजिये।
- तदनुसार निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

भक्ति साहित्य का आशय विभिन्न संतों, कवियों और फकीरों के भक्तिपूर्ण लेखन से है जिन्होंने विभिन्न भाषाओं और शैलियों के माध्यम से भगवान के प्रति अपने प्रेम और भक्ति को व्यक्त किया। यह भारत के विभिन्न क्षेत्रों में एक लोकप्रिय आंदोलन के रूप में उभरा था जिसमें ब्राह्मणवादी रूढ़िवाद और कर्मकांड के प्रभुत्व को चुनौती दी गई थी।

मुख्य भाग:

भक्ति साहित्य की प्रकृति:

- इसमें लेखन तमिल, तेलुगु, कन्नड़, हिंदी, मराठी, बंगाली आदि स्थानीय भाषाओं में किया गया जिससे यह आम जनता के लिये भी सुलभ हो गया।
- यह विभिन्न धार्मिक परंपराओं जैसे वैष्णववाद, शैववाद, सूफीवाद आदि से प्रभावित था, जो भारतीय संस्कृति की विविधता और समन्वय को दर्शाता है।
- इसमें सादगी, सहजता, भावनात्मक तीव्रता, व्यक्तिगत अनुभव और काव्य सौंदर्य जैसी विशेषताएँ थी, जिसने लोगों को आकर्षित किया था।
- इसमें संगीत, नृत्य, नाटक और भजन, कीर्तन, ध्रुपद, राग आदि जैसे कला रूप शामिल होते थे, जो इसके सौंदर्य और आध्यात्मिक आकर्षण को बढ़ाते थे।

भारतीय संस्कृति में योगदान:

- इस दौरान दिव्य प्रबंधम, तिरुमुराई, वचन साहित्य, रामचरितमानस, सूर सागर, पदावली गीत गोविंद आदि जैसे महान साहित्यिक कार्य हुए थे जिससे भारत की भाषाई और साहित्यिक विरासत समृद्ध हुई।

- जातिगत और लैंगिक भेदभाव को दूर करने के साथ धार्मिक असहिष्णुता और अनुष्ठानिक औपचारिकता को अस्वीकार करने के कारण इससे सामाजिक सद्भाव और सुधार को बढ़ावा मिला।
  - इसमें समानता, बंधुत्व, मानवतावाद और सार्वभौमिकता पर बल दिया गया। उदाहरण के लिये रामानंद ने सभी जातियों के शिष्यों को स्वीकार किया; कबीर ने हिंदू और मुस्लिम धर्म की अतार्किक प्रथाओं की आलोचना की; मीराबाई ने पितृसत्ता को चुनौती दी आदि।
- इसके द्वारा मातृभूमि और देश के प्रति प्रेम को बल मिलने से विदेशी आक्रमणों के खिलाफ राष्ट्रीय प्रतिरोध की भावना को बढ़ावा मिला
  - उदाहरण के लिये गुरु नानक ने मुगलों के अत्याचारों की निंदा की थी तथा शिवाजी, तुकाराम की शिक्षाओं से प्रेरित थे आदि।

निष्कर्ष:

भक्ति साहित्य से भारत का सांस्कृतिक आयाम समृद्ध हुआ था। इसके द्वारा लोगों की आकांक्षाओं और भावनाओं के प्रतिबिंबित होने के साथ समग्र सांस्कृतिक विकास में योगदान मिला था।

Q11. वैश्विक राजनीति और आर्थिक व्यवस्था पर प्रथम विश्व युद्ध के प्रभावों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- प्रथम विश्व युद्ध का संक्षिप्त परिचय देते हुए अपना उत्तर प्रारंभ कीजिये।
- वैश्विक राजनीति और आर्थिक व्यवस्था पर प्रथम विश्व युद्ध के प्रभावों की चर्चा कीजिये।
- तदनुसार निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) एक वैश्विक संघर्ष था जिसमें विश्व की अधिकांश प्रमुख शक्तियाँ शामिल थीं और इसके परिणामस्वरूप काफी विनाश हुआ था। इसका विश्व की राजनीति और आर्थिक व्यवस्था पर भी दूरगामी प्रभाव पड़ा था क्योंकि इससे शक्ति संतुलन, क्षेत्रों के मानचित्र एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति को नया आकार मिला।

मुख्य भाग:

- **शक्ति संतुलन:**
  - इस युद्ध ने ब्रिटेन, फ्राँस, जर्मनी, ऑस्ट्रिया-हंगरी, रूस और ऑटोमन तुर्की जैसे पुराने यूरोपीय साम्राज्यों को कमजोर कर दिया एवं संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान तथा सोवियत संघ जैसी नई शक्तियों का उदय हुआ। इस युद्ध के कारण एशिया, अफ्रीका और मध्य पूर्व में राष्ट्रवादी आंदोलनों का उदय हुआ, जिससे पश्चिम के औपनिवेशिक प्रभुत्व को चुनौती मिली थी।
  - इस युद्ध से लोकतंत्र और पूंजीवाद की वैकल्पिक विचारधाराओं के रूप में फासीवाद और साम्यवाद के उदय का मार्ग भी प्रशस्त हुआ था।
- **विभिन्न क्षेत्रों का मानचित्र परिवर्तन:**
  - इस युद्ध के परिणामस्वरूप यूरोप तथा मध्य पूर्व के मानचित्र का फिर से निर्धारण हुआ, क्योंकि पुराने साम्राज्यों के विघटन से नए राज्य बनाए गए या विस्तारित किये गए। उदाहरण के लिये पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, फिनलैंड, एस्टोनिया, लातविया, लिथुआनिया, तुर्की, इराक, सीरिया, लेबनान, फिलिस्तीन और जॉर्डन कुछ नए या संशोधित राज्य थे जिनका उदय युद्ध के बाद हुआ था।
  - इस युद्ध के कारण राष्ट्र संघ का गठन भी हुआ था जो एक सामूहिक सुरक्षा प्रणाली स्थापित करने तथा भविष्य के युद्धों को रोकने का एक प्रयास था।
- **अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति:**
  - इस युद्ध से बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था का परिवर्तन द्विध्रुवीय विश्व व्यवस्था में हुआ, क्योंकि युद्ध के बाद दो प्रतिद्वंद्वी गुट उभरे: मित्र राष्ट्र (ब्रिटेन, फ्राँस और संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में) और धुरी राष्ट्र (जर्मनी, ऑस्ट्रिया-हंगरी और इटली के नेतृत्व में)।
  - इस युद्ध में रासायनिक हथियार, पनडुब्बियों, टैंक एवं हवाई जहाज के उपयोग के साथ युद्ध के नए रूप देखने को मिले।
  - इस युद्ध ने विदेश नीति संबंधी निर्णयों को प्रभावित करने में जनमत और जनसंचार माध्यमों की भूमिका भी बढ़ा दी।
- **विचारधाराओं की भूमिका:**
  - इस युद्ध ने राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद, उदारवाद और समाजवाद जैसी मौजूदा विचारधाराओं की कमियों और विरोधाभासों को उजागर किया। इसने फासीवाद (इटली और जर्मनी में) तथा साम्यवाद (रूस में) जैसी नई विचारधाराओं को भी प्रेरित किया।
  - इस युद्ध के उपरांत कई बुद्धिजीवियों और कलाकारों ने सभ्यता के मूल्यों और अर्थों पर सवाल उठाया।

निष्कर्ष:

प्रथम विश्व युद्ध, विश्व इतिहास की एक ऐसी ऐतिहासिक घटना थी जिसने वैश्विक राजनीति और आर्थिक व्यवस्था को बदल दिया। इसने राष्ट्रों के बीच शक्ति संतुलन को बदलने के साथ क्षेत्रों के मानचित्र को बदलने एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और सहयोग की प्रकृति को नया आकार

देने में भूमिका निभाई। इस युद्ध से 20वीं सदी में द्वितीय विश्व युद्ध, शीत युद्ध, उपनिवेशवाद से मुक्ति, वैश्वीकरण और आतंकवाद जैसे अन्य संघर्षों और संकटों के लिये भी मंच तैयार हुआ।

Q12. भारतीय स्थापत्य के इतिहास को आकार देने में विजयनगर साम्राज्य के महत्त्व पर चर्चा कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- विजयनगर साम्राज्य और उसके ऐतिहासिक संदर्भ का संक्षिप्त परिचय देते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- भारत के स्थापत्य इतिहास को आकार देने में विजयनगर साम्राज्य के महत्त्व पर चर्चा कीजिये।
- भारत में आगे के वास्तुशिल्प विकास पर इसके स्थायी प्रभाव पर बल देते हुए निष्कर्ष दीजिये।

विजयनगर साम्राज्य (जिसका 14वीं से 17वीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में प्रभुत्व था) का भारत के स्थापत्य इतिहास को आकार देने में अत्यधिक महत्त्व रहा है। वास्तुशिल्प में इसके योगदान ने एक स्थायी विरासत छोड़ी है जो आज भी भारत की कला एवं वास्तुकला को प्रेरित और प्रभावित करती है।

भारत के स्थापत्य इतिहास को आकार देने में विजयनगर साम्राज्य का महत्त्व:

शैलियों का संलयन: विजयनगर वास्तुकला विभिन्न स्थापत्य शैलियों के मिश्रण के लिये प्रसिद्ध है। इसमें द्रविड़, चालुक्य, होयसल और इस्लामी वास्तुकला के तत्वों को एक साथ लाया गया, जिसके परिणामस्वरूप एक अद्वितीय और विशिष्ट वास्तुकला का विकास हुआ। इस संलयन से एक नई डिज़ाइन का विकास हुआ जो नवीनता के साथ सौंदर्य की दृष्टि से आकर्षक थी।

स्मारकीय संरचनाएँ: यह साम्राज्य भव्य और विशाल मंदिर परिसरों, किलों, महलों और सिंचाई प्रणालियों के निर्माण के लिये जाना जाता है। इनमें से प्रमुख हैं विरुपाक्ष मंदिर, विट्ठल मंदिर और हम्पी के खंडहर। ये संरचनाएँ धार्मिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों को पूरा करने वाली स्मारकीय इमारतें बनाने के लिये साम्राज्य की प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करती हैं।

प्रतिष्ठित मंदिर वास्तुकला: विजयनगर मंदिरों की विशेषता उनके विशाल गोपुरम, जटिल मूर्तियाँ और व्यापक परिसर हैं। इसमें सबसे प्रतिष्ठित उदाहरण विरुपाक्ष मंदिर का 160 फुट ऊँचा गोपुरम है, जो द्रविड़ वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना है। ये मंदिर दक्षिण भारतीय मंदिर वास्तुकला के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

निर्माण तकनीकों में प्रगति: विजयनगर के वास्तुकारों और इंजीनियरों ने निर्माण तकनीकों में महत्त्वपूर्ण प्रगति की। उन्होंने टिकाऊ और देखने में आश्चर्यजनक संरचनाएँ बनाने के लिये बारीक नक्काशीदार पत्थर के ब्लॉक, जटिल प्लास्टर कार्य और उन्नत संरचनात्मक प्रणालियों का उपयोग किया। इस विशेषज्ञता ने भारत में बाद के वास्तुशिल्प विकास को प्रभावित किया।

जल प्रबंधन और सिंचाई: जल प्रबंधन और सिंचाई प्रणालियों पर साम्राज्य का बल, इसकी वास्तुकला विरासत का एक और पहलू है। तुंगभद्रा बाँध और पुष्कर्णी टैंक जैसे विशाल टैंकों और नहरों के निर्माण से न केवल कृषि को समर्थन मिला बल्कि इसने इस साम्राज्य के इंजीनियरिंग कौशल को भी प्रदर्शित किया।

कला का संरक्षण: विजयनगर साम्राज्य के शासक कला के महान संरक्षक थे। उन्होंने कारीगरों, मूर्तिकारों और वास्तुकारों को उत्कृष्ट कलाकृतियाँ बनाने के लिये प्रोत्साहित किया। इस संरक्षण के परिणामस्वरूप कुशल कारीगरों का विकास हुआ तथा एक समृद्ध कलात्मक परंपरा विकसित हुई।

सांस्कृतिक समन्वयवाद: विजयनगर साम्राज्य की स्थापत्य उपलब्धियाँ इस काल के सांस्कृतिक समन्वयवाद को दर्शाती हैं। इसमें हिंदू, इस्लामी और स्थानीय परंपराओं सहित विविध प्रभाव शामिल थे। यह सांस्कृतिक सम्मिश्रण साम्राज्य के समावेशी दृष्टिकोण का एक प्रमाण है, जिससे समृद्ध तथा विविध स्थापत्य विरासत को बढ़ावा मिला।

विरासत का संरक्षण: अंततः साम्राज्य के पतन के बावजूद, इसके कई वास्तुशिल्प चमत्कार समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं। ये महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल, पर्यटक आकर्षण और समकालीन वास्तुकारों के लिये प्रेरणा के स्रोत बने हुए हैं।

निष्कर्ष:

विजयनगर साम्राज्य की भारत के स्थापत्य इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसकी वास्तुकला विरासत न केवल साम्राज्य की भव्यता एवं कलात्मक उपलब्धियों को प्रदर्शित करती है बल्कि विविध वास्तुशिल्प परंपराओं के सामंजस्यपूर्ण मिश्रण का भी प्रतिनिधित्व करती है। भारत में बाद के वास्तुशिल्प विकास पर विजयनगर वास्तुकला का स्थायी प्रभाव देश की वास्तुकला विरासत को आकार देने में इसके महत्त्व को रेखांकित करता है।

Q13. वीर सावरकर और महात्मा गांधी के राजनीतिक एवं वैचारिक दृष्टिकोण के बीच समानताओं और अंतरों पर चर्चा कीजिये? (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- दोनों व्यक्तित्वों के बारे में संक्षिप्त विवरण देते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- उनके बीच समानताओं पर चर्चा कीजिये।
- इसके साथ ही उनके राजनीतिक और वैचारिक दृष्टिकोण के बीच अंतरों पर भी चर्चा कीजिये।
- मुख्य बिंदुओं को सारांशित करते हुए निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

विनायक दामोदर सावरकर (जिन्हें आमतौर पर वीर सावरकर के नाम से जाना जाता है) और महात्मा गांधी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में दो प्रमुख व्यक्ति थे। उनके विशिष्ट राजनीतिक एवं वैचारिक दृष्टिकोण ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से आज़ादी हेतु भारत के आंदोलन को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- हालाँकि दोनों ही उत्साही राष्ट्रवादी थे जिनका भारत को स्वतंत्र कराने का समान लक्ष्य था लेकिन दोनों के दृष्टिकोण, दर्शन और रणनीति में काफी अंतर था।

मुख्य भाग:

उनके राजनीतिक एवं वैचारिक दृष्टिकोण में समानताएँ:

- **राष्ट्रवाद और देशभक्ति:** सावरकर और गांधी दोनों ही भावुक भारतीय राष्ट्रवादी थे जो देश को ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्त कराने के लिये समर्पित थे। सावरकर के लेखन से गांधी के स्व-शासन के आह्वान की तरह, भारतीय प्रतिरोध को बल मिला।
- **सांस्कृतिक गौरव:** दोनों नेताओं को भारत की समृद्ध सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत पर गर्व था। सावरकर ने भारत के प्राचीन गौरव को पुनर्जीवित करने तथा उसका जश्न मनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया एवं गांधी ने खादी जैसे पारंपरिक भारतीय हस्तशिल्प और पोशाक को बढ़ावा दिया।
- **अस्पृश्यता का विरोध:** सावरकर और गांधी दोनों ही अस्पृश्यता के मुखर विरोधी थे। सावरकर ने सामाजिक सुधारों एवं जाति-आधारित भेदभाव के उन्मूलन की वकालत की, जबकि गांधी ने दलितों (जिन्हें पहले अछूत कहा जाता था) के हितों की वकालत की तथा उनके उत्थान की दिशा में कार्य किया।
- **पश्चिमी प्रभाव की आलोचना:** दोनों नेता पश्चिमी साम्राज्यवाद और भारत पर उसके प्रभाव के आलोचक थे। सावरकर ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद की निंदा की, जबकि गांधी के असहयोग एवं स्वदेशी आन्दोलन (आत्मनिर्भरता) के दर्शन का उद्देश्य भारतीय जीवन शैली में पश्चिमी प्रभाव को कम करना था।
- **विभाजन का विरोध:** सावरकर और गांधी दोनों ही धार्मिक आधार पर भारत के विभाजन के विरुद्ध थे। सावरकर ने एकजुट भारत की वकालत की तथा उनके विचार सांप्रदायिक हिंसा को रोकने एवं हिंदू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा देने के गांधी के प्रयासों के अनुरूप थे।

उनके राजनीतिक और वैचारिक दृष्टिकोण में अंतर:

मतभेद न केवल उनके प्रतिरोध के तरीकों में थे बल्कि भारत के भविष्य के प्रति उनके दृष्टिकोण में भी थे।

- **प्रतिरोध के तरीके:**
  - **सावरकर:** सावरकर ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ सशस्त्र प्रतिरोध की वकालत की थी। वह स्वतंत्रता हासिल करने के क्रम में बल प्रयोग में विश्वास करते थे और उन्होंने अंग्रेज़ों के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह पर आधारित "द फर्स्ट वॉर ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस" नामक एक पुस्तक भी लिखी थी।
  - **गांधी:** दूसरी ओर, गांधी ने स्वतंत्रता प्राप्त करने के साधन के रूप में अहिंसक सविनय अवज्ञा आन्दोलन का समर्थन किया। उनके सत्याग्रह (अहिंसक प्रतिरोध) के दर्शन द्वारा नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति पर बल दिया गया।
- **धार्मिक और सांप्रदायिक सद्भाव:**
  - **सावरकर:** सावरकर की राजनीतिक सोच हिंदू राष्ट्रवाद एवं हिंदुत्व पर अधिक केंद्रित थी। हालाँकि वे स्वाभाविक रूप से मुस्लिम विरोधी नहीं थे, भारत के बारे में उनका दृष्टिकोण हिंदू संस्कृति के प्रभुत्व की ओर झुका हुआ था।
  - **गांधी:** गांधी धार्मिक और सांप्रदायिक सद्भाव के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने भारत में सभी समुदायों के बीच एकता पर ज़ोर देते हुए, हिंदुओं एवं मुसलमानों के बीच अंतराल को कम करने के लिये अथक प्रयास किये।
- **समाज सुधार:**
  - **सावरकर:** सावरकर जाति-आधारित भेदभाव के आलोचक थे लेकिन उनका प्राथमिक ध्यान राजनीतिक स्वतंत्रता पर था। सामाजिक सुधार के क्षेत्र में उनके प्रयास महत्त्वपूर्ण नहीं थे।
  - **गांधी:** गांधी सामाजिक सुधार, विशेष रूप से अस्पृश्यता के उन्मूलन और दलितों (जिन्हें पहले अछूत कहा जाता था) के उत्थान के लिये प्रतिबद्ध थे। उन्होंने भारतीय समाज के भीतर सामाजिक अन्याय को समाप्त करने के लिये कई आंदोलन शुरू किये।
- **स्वतंत्रता के बाद के भारत हेतु दृष्टिकोण:**
  - **सावरकर:** स्वतंत्र भारत के लिये सावरकर का दृष्टिकोण हिंदुत्व में उनके विश्वास से प्रभावित था। उन्होंने भारत को एक हिंदू-बहुल राष्ट्र के रूप में देखा तथा हिंदू संस्कृति पर अधिक बल देने की कल्पना की।
  - **गांधी:** भारत के लिये गांधी का दृष्टिकोण समावेशी और धर्मनिरपेक्ष था। उन्होंने एक विविध तथा बहुलवादी राष्ट्र की वकालत की, जहाँ नैतिक मूल्यों पर बल देने के साथ सभी धर्म और समुदाय सौहार्दपूर्ण ढंग से सह-अस्तित्व में रह सकें।

निष्कर्ष:

वीर सावरकर और महात्मा गांधी भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रभावशाली नेता थे। उनके बीच मतभेद, आंदोलन की विविधता का परिचायक है। दोनों ने स्वतंत्रता के लिये संघर्ष के विशिष्ट पहलुओं का प्रतिनिधित्व करते हुए, भारत के इतिहास पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ा। उनके विरोधाभासी दृष्टिकोण ऐतिहासिक चर्चा का विषय बने हुए हैं, जो भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष में विविधता को रेखांकित करते हैं।

Q14. लोक कलाओं के विभिन्न कला रूपों के माध्यम से संस्कृति की विविधता और प्रकृति के सामंजस्य को किस प्रकार प्रतिबिंबित किया जाता है? व्याख्या कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- लोक कलाओं का संक्षिप्त विवरण देते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- विभिन्न कला रूपों पर चर्चा कीजिये।
- साथ ही चर्चा कीजिये कि इससे सांस्कृतिक विविधता एवं प्रकृति के सामंजस्य को किस प्रकार प्रतिबिंबित किया जाता है।
- आगे की राह बताते हुए निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

लोक कला कलात्मक अभिव्यक्ति के पारंपरिक और स्वदेशी रूपों को संदर्भित करती है जो किसी विशिष्ट समुदाय या क्षेत्र की संस्कृति, रीति-रिवाजों एवं विरासत में गहराई से निहित होती हैं।

- लोक कला में अक्सर दैनिक जीवन, पौराणिक कथाओं, आध्यात्मिकता एवं प्राकृतिक वातावरण के तत्व शामिल होते हैं। यह एक विशेष समुदाय की सामूहिक रचनात्मकता और विरासत का प्रतिबिंब है। लोक कला के उदाहरण में मधुबनी पेंटिंग, गोंड कला, रंगोली आदि शामिल हैं।

मुख्य भाग :

भारत में लोक कलाओं द्वारा विभिन्न तरीकों से सांस्कृतिक विविधता को प्रतिबिंबित किया जाता है:

- **क्षेत्रीय विशिष्टता:** लोक कलाएँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों की अनूठी सांस्कृतिक विशेषताओं को प्रदर्शित करती हैं।
  - उदाहरण के लिये, राजस्थान में घूमर नृत्य अपनी रंगीन वेशभूषा और सुंदर लय के साथ जीवंत राजस्थानी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है।
- **पारंपरिक पोशाक:** लोक प्रदर्शनों में प्रत्येक संस्कृति के लिये विशिष्ट पारंपरिक कपड़े और सहायक उपकरण शामिल होते हैं।
  - उत्तर भारत का कथक नृत्य अपनी विशिष्ट वेशभूषा के लिये जाना जाता है जो क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग होती है।
- **धार्मिक विविधता:** लोक कलाओं द्वारा अक्सर भारत में धार्मिक विविधता को व्यक्त किया जाता है।
  - गुजरात में डांडिया रास नृत्य को हिंदू त्योहार (नवरात्रि) के दौरान किया जाता है, जो क्षेत्र के धार्मिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं को प्रदर्शित करता है।
- **परंपराओं का संरक्षण:** लोक कलाएँ पारंपरिक ज्ञान और रीति-रिवाजों के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
  - झारखंड का संथाल नृत्य संथाल समुदाय की आदिवासी संस्कृति और परंपराओं को प्रतिबिंबित करता है।

भारत में लोक कलाओं द्वारा विभिन्न कला रूपों के माध्यम से प्रकृति के बीच सामंजस्य को प्रतिबिंबित किया जाता है:

- प्राकृतिक तत्वों का चित्रण: लोक कलाओं में अक्सर नदियों, पहाड़ों, पेड़ों और जानवरों जैसे प्राकृतिक तत्त्वों को अभिन्न घटकों के रूप में चित्रित किया जाता है।
  - उदाहरण के लिये, बिहार की मधुबनी पेंटिंग में अक्सर मोर, मछली और कमल के फूल जैसे प्राकृतिक रूपांकन शामिल होते हैं।
- मौसमी उत्सव: कई लोक-कला रूप, मौसमी परिवर्तनों एवं कृषि चक्रों से निकटता से संबंधित हैं, जो मानव जीवन एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य को प्रतिबिंबित करते हैं।
  - तमिलनाडु में पोंगल त्यौहार, फसली मौसम के उत्सव के रूप में मनाया जाता है।
- **प्रकृति-प्रेरित रंग:** लोक कला में रंगों का चयन अक्सर प्रकृति से प्रेरित होता है।
  - उदाहरण के लिये, राजस्थान की फड़ पेंटिंग में प्रकृति की जीवंतता को दर्शाने के लिये लाल, पीले और हरे जैसे जीवंत रंगों का उपयोग होता है।
- **प्राकृतिक परिवेश में अनुष्ठान:** कुछ लोक कलाएँ प्राकृतिक परिवेश में पर्यावरण के साथ संबंध पर ज़ोर देती हैं।
  - असम में बिहू नृत्य अक्सर बदलते मौसम और क्षेत्र की प्राकृतिक सुंदरता के प्रतीक के रूप में किया जाता है।

लोक कलाओं को बढ़ावा देने हेतु सरकारी प्रयास:

- **राष्ट्रीय लोक महोत्सव:** संस्कृति मंत्रालय द्वारा आयोजित राष्ट्रीय लोक महोत्सव, भारत के विभिन्न क्षेत्रों की लोक कलाओं की विविधता को प्रदर्शित करता है। यह लोक कलाकारों को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिये एक मंच प्रदान करता है।
- **त्योहारों के माध्यम से प्रचार:** लोक कला रूपों को अक्सर सांस्कृतिक त्योहारों एवं कार्यक्रमों में प्रदर्शित किया जाता है, जैसे सूरजकुंड शिल्प मेला और काला घोड़ा कला महोत्सव में कलाकार दर्शकों के समक्ष प्रस्तुति करते हैं।

निष्कर्ष:

भारत के विविध लोक कला रूप देश की सांस्कृतिक समृद्धि एवं लोगों और प्रकृति के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंधों को प्रतिबिंबित करते हैं। ये कला रूप न केवल रचनात्मकता की अभिव्यक्ति हैं बल्कि भारत की सांस्कृतिक विरासत के अभिन्न अंग भी हैं जिनसे एकता, विविधता एवं पर्यावरण चेतना को बढ़ावा मिलता है।

Q15. स्वतंत्रता पश्चात भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास पर चर्चा कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- वर्ष 1947 के बाद विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले विकास का संक्षिप्त विवरण देते हुए अपने उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र की प्रमुख उपलब्धियों पर चर्चा कीजिये।
- तदनुसार निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

वर्ष 1947 में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से, भारत ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में परिवर्तनकारी यात्रा की है। भारत एक आत्मनिर्भर और तकनीकी रूप से उन्नत समाज के रूप में विकसित हुआ है।

मुख्य भाग:

इस विकास को प्रदर्शित करने वाले मुख्य बिंदु और उदाहरण:

- **संस्थागत आधार:** भारत द्वारा अनुसंधान और शिक्षा को बढ़ावा देने के लिये भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IITs), भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान (IISERs) तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) जैसे प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थानों की स्थापना की गई है।
- **अंतरिक्ष अन्वेषण:** भारत की अंतरिक्ष एजेंसी, ISRO (भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन) ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति की है, जिसमें चंद्रयान -1 (भारत का पहला चंद्र अन्वेषण मिशन) और मंगलयान (भारत का मंगल ऑर्बिटर मिशन) का प्रक्षेपण शामिल है।
  - **उदाहरण:** वर्ष 2013 में मंगल ग्रह पर मंगलयान की सफलता ने ISRO को लाल ग्रह तक पहुँचने वाली विश्व की चौथी अंतरिक्ष एजेंसी बना दिया।
- **परमाणु क्षमता:** भारत ने वर्ष 1974 (स्माइलिंग बुद्धा) और वर्ष 1998 (पोखरण-II) में सफल परमाणु परीक्षण करके परमाणु क्षमता विकसित की।
- **सूचना प्रौद्योगिकी (IT) और सॉफ्टवेयर उद्योग:** भारत एक वैश्विक आईटी और सॉफ्टवेयर केंद्र के रूप में उभरा है, जिसमें इंफोसिस, टीसीएस और विप्रो जैसी वैश्विक स्तर की दिग्गज कंपनियाँ शामिल हैं।
  - **उदाहरण:** 1990 के दशक के अंत में Y2K बग संकट ने भारत की आईटी शक्ति को प्रदर्शित किया क्योंकि भारतीय IT पेशेवरों ने विश्व भर में इस मुद्दे को हल करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **फार्मास्यूटिकल्स और जैव प्रौद्योगिकी:** भारत का फार्मास्युटिकल उद्योग सस्ती जेनेरिक दवाओं के उत्पादन द्वारा वैश्विक बाज़ार में एक प्रमुख हितधारक बन गया है।
  - **उदाहरण:** डॉ. रेड्डीज़ और सिप्ला जैसी भारतीय दवा कंपनियों ने विश्व स्तर पर स्वास्थ्य सेवा को और अधिक सुलभ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- **हरित क्रांति:** उच्च उपज वाली फसल किस्मों और आधुनिक कृषि तकनीकों की शुरूआत के साथ, भारत ने हरित क्रांति के माध्यम से कृषि उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि हासिल की है।
- **नवीकरणीय ऊर्जा:** भारत अपने कार्बन पदचिह्न को कम करने के लिये सौर और पवन ऊर्जा जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों में निवेश कर रहा है।
  - **उदाहरण:** जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन का उद्देश्य सौर ऊर्जा को बढ़ावा देना तथा भारत को सौर ऊर्जा उत्पादन में वैश्विक स्तर पर प्रमुख देश बनाना है।
- **विज्ञान और अनुसंधान संस्थान:** भारत में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च (TIFR), भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (BARC) और भारतीय सांख्यिकी संस्थान (ISI) जैसे प्रमुख अनुसंधान संस्थान हैं जो वैज्ञानिक प्रगति में योगदान देते हैं।

निष्कर्ष:

स्वतंत्रता के बाद भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विभिन्न उपलब्धियों और प्रगति को देखा गया है। स्वतंत्रता के समय आधारभूत तकनीकी बुनियादी ढाँचे के लिये संघर्ष करने वाले देश से भारत वर्तमान में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में एक वैश्विक हितधारक बन गया है।

Q16. वर्ष 1857 का विद्रोह किस प्रकार से भारत में शासन परिवर्तन का निर्णायक मोड़ था? इस विद्रोह के महत्त्व पर प्रकाश डालिये। (150 शब्द)

उत्तर :

दृष्टिकोण :
- भूमिका में 1857 के विद्रोह के संक्षिप्त विवरण से कीजिये।
- 1857 का विद्रोह सत्ता परिवर्तन था,चर्चा कीजिये।
- विद्रोह के महत्त्व पर भी चर्चा कीजिये।
- तदनुसार निष्कर्ष दीजिये।

भूमिका:

1857 का भारतीय विद्रोह, जिसे अक्सर सैनिक विद्रोह या प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में भी जाना जाता है, वास्तव में भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी और इसे गहरे परिणामों के साथ एक शासन परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है।

विद्रोह के महत्त्व पर प्रकाश डालने वाले कुछ प्रमुख पहलू :

मुख्य भाग :

1857 का विद्रोह भारत के लिये एक सत्ता परिवर्तन था:

- **ईस्ट इंडिया कंपनी शासन का अंत:** विद्रोह ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की शोषणकारी और दमनकारी नीतियों को उजागर कर दिया, जिससे उसके शासन का अंत हो गया।
- **ब्रिटिश क्राउन का प्रत्यक्ष नियंत्रण:** वर्ष 1858 की रानी विक्टोरिया की उद्घोषणा ने ब्रिटिश राज की शुरुआत को चिह्नित करते हुए शासन को ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटिश क्राउन में स्थानांतरित कर दिया।
- **राष्ट्रवाद का उदय :** विद्रोह ने विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों के लोगों को ब्रिटिश शासन के खिलाफ एकजुट किया, जिससे भारतीय राष्ट्रवाद की भावना की नींव पड़ी।
- **भारतीय नेतृत्व पर प्रभाव:** विद्रोह ने बहादुर शाह द्वितीय, रानी लक्ष्मी बाई और कुँवर सिंह जैसे नेताओं का उद्भव हुआ, जो प्रतिरोध के प्रतीक बन गए और बाद में स्वतंत्रता आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन:** विद्रोह ने आर्थिक सुधारों पर चर्चा को प्रेरित किया, जिससे रेलवे के निर्माण और आधुनिक डाक प्रणाली की शुरूआत जैसे आधुनिकीकरण के प्रयास शुरू हुए।
- **सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभाव:** विद्रोहियों ने खुद को ब्रिटिश सांस्कृतिक घुसपैठ के खिलाफ अपनी सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं के रक्षक के रूप में देखा, जिससे पारंपरिक मूल्यों का पुनरुत्थान हुआ।

विद्रोह का महत्त्व:

- **राष्ट्रवाद का उद्भव:** विद्रोह ने सभी क्षेत्रों और समुदायों में भारतीयों को एकजुट किया, एक सामूहिक पहचान का पोषण किया और भविष्य के स्वतंत्रता आंदोलनों के लिये आधार तैयार किया।
- शासन व्यवस्था में परिवर्तन: इसने शासन और प्रशासनिक सुधारों की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। भारत सरकार अधिनियम, 1858 ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटिश क्राउन को अधिकार हस्तांतरित कर दिये, जिससे प्रशासनिक और नीतिगत परिवर्तन हुए।
- सामाजिक और धार्मिक सुधार: विद्रोह के बाद, राजा राम मोहन राय और ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे नेताओं ने महिलाओं के अधिकारों सहित सामाजिक सुधारों का समर्थन किया। विद्रोह की विफलता ने शैक्षिक और सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता को रेखांकित किया।
- भारतीय सेना पर प्रभाव: विद्रोह ने भविष्य में होने वाले विद्रोहों को रोकने के लिये भारतीय सेना के पुनर्गठन को प्रेरित किया। भर्ती और अनुशासन में सुधार पेश किये गए। ब्रिटिश शासन के खिलाफ सांप्रदायिक एकता को रोकने के लिये "फूट डालो और राज करो" की नीति अपनाई गई।
- अंतरराष्ट्रीय जागरूकता: विद्रोह ने विश्व स्तर पर ध्यान आकर्षित किया, जिससे स्वतंत्रता के लिये भारतीय संघर्ष वैश्विक चेतना में आ गया। इससे दुनिया भर में भारत के प्रति सहानुभूति और समर्थन प्राप्त हुआ।

निष्कर्ष :

1857 का भारतीय विद्रोह भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्व था, जिससे ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का अंत हुआ, ब्रिटिश राज की स्थापना हुई और एक एकजुट भारतीय चेतना का उदय हुआ जिसने अंतत: स्वतंत्रता की दिशा में राष्ट्र के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया।

Q17. 18वीं और 19वीं शताब्दी में यूरोप के औद्योगीकरण में योगदान देने वाले कारकों पर चर्चा कीजिये। इस अवधि के दौरान औद्योगीकरण ने यूरोपीय समाज को किस प्रकार प्रभावित किया? (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- 18वीं और 19वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में हुई औद्योगिक क्रांति का संक्षिप्त विवरण देते हुए उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- उन प्रमुख कारकों पर चर्चा कीजिये जिन्होंने यूरोप में औद्योगीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।
- बताइये कि 18वीं और 19वीं शताब्दी के दौरान औद्योगीकरण ने यूरोपीय समाज के विभिन्न पहलुओं को किस प्रकार प्रभावित किया था।
- यूरोपीय औद्योगीकरण के प्रमुख कारकों और आधुनिक समाज तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभावों को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष दीजिये।

परिचय:

औद्योगीकरण का आशय अर्थव्यवस्था को कृषि से विनिर्माण क्षेत्र में बदलने की प्रक्रिया है। इसमें वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिये मशीनों, कारखानों और ऊर्जा के नए स्रोतों का उपयोग करना शामिल है।

18वीं और 19वीं शताब्दी में यूरोप का औद्योगीकरण एक परिवर्तनकारी एवं जटिल प्रक्रिया थी जिसका यूरोपीय समाज, अर्थव्यवस्था और संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

मुख्य भाग:

इस बदलाव में कई प्रमुख कारकों का योगदान है:

- **तकनीकी प्रगति:** 17वीं सदी की वैज्ञानिक क्रांति से भाप इंजन,

स्पिनिंग जेनी, पावरलूम जैसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुए थे जिससे औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा मिलने के साथ औद्योगिक क्रांति के लिये मंच तैयार हुआ।

- **संसाधनों तक पहुँच:** कोयला, लौह अयस्क और जलमार्ग जैसे यूरोप के समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों ने मशीनरी हेतु कच्चे माल और ऊर्जा की आपूर्ति में सहायता करके औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया, जिससे कोयला खनन एवं इस्पात उत्पादन जैसे उद्योगों की संवृद्धि संभव हुई।
- **पूंजी और निवेश:** औपनिवेशिक व्यापार और बैंकिंग प्रणालियों के माध्यम से उद्यमों के वित्तपोषण में महत्त्वपूर्ण सहायता मिली थी। धनी निवेशकों द्वारा कारखानों, रेलवे और बुनियादी ढाँचे का समर्थन किया गया, जिससे आर्थिक विस्तार हुआ।
- **शहरीकरण:** औद्योगिक शहरों के विकास से ग्रामीण लोग कारखाने की ओर नौकरियों की तलाश हेतु आकर्षित हुए, जिससे शहरीकरण को बढ़ावा मिलने के साथ एक नया औद्योगिक कार्यबल तैयार हुआ।
- **परिवहन नेटवर्क:** व्यापक परिवहन नेटवर्क (नहरें, रेलवे, बेहतर सड़कें) के विकास से व्यापार और संचार को बढ़ावा मिला, जिससे विनिर्माताओं को व्यापक बाजारों तक पहुँच प्राप्त हुई।
- **विधिक और राजनीतिक कारक:** ब्रिटेन जैसे कुछ यूरोपीय देशों में एक स्थिर विधिक ढाँचा था जिससे संपत्ति के अधिकारों की रक्षा होने के साथ नवाचार को प्रोत्साहन मिला था। इसके अतिरिक्त यूरोप के कई हिस्सों में राजनीतिक स्थिरता से औद्योगिक विकास के लिये अनुकूल वातावरण मिला।
- **उद्यमिता और नवाचार:** उद्यमियों और अन्वेषकों ने औद्योगीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। जेम्स वाट, जॉर्ज स्टीफेंसन और रिचर्ड आर्कराइट जैसे व्यक्तियों ने औद्योगिक प्रौद्योगिकी और प्रक्रियाओं में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

इस अवधि के दौरान यूरोपीय समाज पर गहन एवं बहुआयामी प्रभाव पड़ा था जैसे:

- **आर्थिक परिवर्तन:** औद्योगीकरण से आर्थिक विकास को गति मिली, नए उद्योगों, बाजारों एवं नौकरियों का सृजन हुआ, कृषि अर्थव्यवस्थाओं का औद्योगिक एवं पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में परिवर्तन हुआ तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन को बल मिला।
- **सामाजिक स्तरीकरण:** औद्योगीकरण के कारण सामाजिक स्तर पर वर्ग असमानताएँ विकसित हुईं, उद्योगपति और पूंजीपति समृद्ध हुए जबकि श्रमिक वर्ग को खराब परिस्थितियों के साथ कम वेतन पर कार्य करना पड़ा।
- **तकनीकी प्रगति:** तकनीकी नवाचार से जीवन स्तर में सुधार हुआ, लोगों की वस्तुओं तक पहुँच में वृद्धि हुई तथा कृषि एवं परिवहन दक्षता में सुधार हुआ।
- **जनसांख्यिकीय बदलाव:** स्वास्थ्य सेवा में सुधार होने के साथ शहरों में रहने की स्थिति बेहतर होती गई। 19वीं सदी के दौरान यूरोप में तीव्र जनसंख्या वृद्धि हुई थी। इस जनसांख्यिकीय बदलाव ने औद्योगिक विकास तथा शहरीकरण को और बढ़ावा दिया था।
- **सांस्कृतिक और बौद्धिक परिवर्तन:** औद्योगीकरण का सांस्कृतिक और बौद्धिक स्तर पर भी प्रभाव पड़ा था। इस दौरान समाजवाद और मार्क्सवाद सहित नए दर्शन एवं विचारधाराओं का उदय हुआ, जिनके द्वारा औद्योगिक पूंजीवाद से जुड़ी असमानताओं एवं सामाजिक अन्याय की आलोचना की गई थी।
- **राजनीतिक परिवर्तन:** राजनीतिक परिवर्तन और लोकतांत्रीकरण से राजशाही एवं अभिजात वर्ग की पुरानी व्यवस्था को चुनौती मिली। इसने उदारवाद, राष्ट्रवाद, समाजवाद, नारीवाद और साम्राज्यवाद जैसी नई विचारधाराओं को भी प्रेरित किया।

निष्कर्ष:

18वीं और 19वीं शताब्दी में यूरोप का औद्योगीकरण तकनीकी, आर्थिक एवं सामाजिक कारकों से प्रेरित एक बहुआयामी प्रक्रिया थी। इससे आर्थिक समृद्धि और तकनीकी प्रगति तो हुई लेकिन इससे शहरीकरण, सामाजिक स्तरीकरण और श्रमिक आंदोलनों के उदय सहित कई सामाजिक परिवर्तन भी देखे गए। औद्योगीकरण के इस दौर के प्रभाव आज भी आधुनिक यूरोपीय समाज एवं वैश्विक अर्थव्यवस्था को आकार देने में भूमिका निभा रहे हैं।

Q18. इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष के मुद्दे को प्रथम और द्वितीय दोनों विश्व युद्धों के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। विवेचना कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर:

हल करने का दृष्टिकोण:

- इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष का एक संक्षिप्त विवरण प्रदान करते हुए शुरुआत कीजिये।
- इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष में प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध की घटनाओं की भूमिका पर चर्चा कीजिये।
- आप इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष के प्रमुख कारकों और वर्तमान संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता का सारांश देकर निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष एक जटिल और लंबे समय से चला आ रहा विवाद है जिसकी शुरुआत 19वीं सदी के अंत एवं 20वीं सदी की शुरुआत में हुई थी। यह संघर्ष प्रत्यक्ष रूप से प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के कारण नहीं हुआ था बल्कि उन्होंने उन घटनाओं और स्थितियों को आकार देने में अहम भूमिका निभाई जिसके कारण वर्ष 1948 में इज़राइल अस्तित्व में आया तथा इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष शुरू हुआ।

रूपरेखा:

इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष को बढ़ाने में प्रथम विश्व युद्ध की भूमिका:

- **साइक्स-पिकोट समझौता (1916):** यह गुप्त समझौता ब्रिटेन और फ्राँस के मध्य हुआ था। इस समझौते में प्रभावी ढंग से मध्य पूर्व को भविष्य के ब्रिटिश और फ्राँसीसी नियंत्रण अथवा प्रभाव के क्षेत्रों में विभाजित किया गया जिससे इस क्षेत्र के भविष्य का भू-राजनीतिक परिदृश्य प्रभावित हुआ।
- **बाल्फोर घोषणा (1917):** वर्ष 1917 में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार ने बाल्फोर घोषणा (Balfour Declaration) जारी की थी जिसमें फिलिस्तीन में 'यहूदी लोगों के लिये राष्ट्रीय गृह' (National home for the Jewish people) की स्थापना के लिये समर्थन व्यक्त किया गया था।
- **यहूदी आप्रवासन:** फिलिस्तीन में यहूदी आप्रवासन और अवस्थापन के लिये आधार तैयार कर बाल्फोर घोषणा ने संबद्ध क्षेत्र के भविष्य को गंभीर रूप से प्रभावित किया तथा यहूदी गृह राज्य की मांग को बढ़ावा दिया।
- **ओटोमन साम्राज्य:** साइक्स-पिकोट समझौते ने ओटोमन साम्राज्य को आगे बढ़ाने में मदद की तथा फिलिस्तीन में ब्रिटिश जनादेश के लिये आधार तैयार किया। अंततः इस जनादेश ने मुद्दे/संघर्ष को और अधिक ध्रुवीकृत करने एवं मुसलमानों के बीच इज़राइल के प्रति विरोध को भड़काने का काम किया।
- **राष्ट्र संघ का आदेश:** प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप ओटोमन साम्राज्य का पतन हुआ, जिसने सदियों से इस क्षेत्र को नियंत्रित किया था। युद्ध के बाद के समझौते के कारण राष्ट्र संघ ने ब्रिटेन को फिलिस्तीन पर शासन करने का अधिकार दे दिया, जिससे क्षेत्र की जनसांख्यिकी व राजनीतिक गतिशीलता और भी प्रभावित हुई।

इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष में द्वितीय विश्व युद्ध की भूमिका:

- **यहूदियों का नरसंहार:** द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान नरसंहार की भयावहता ने फिलिस्तीन में यहूदियों के आप्रवासन को बढ़ा दिया, जिन्होंने शरण और मातृभूमि की मांग की। ब्रिटिश सरकार को यहूदी और अरब दोनों के दबाव का सामना करना पड़ा, जिससे तनाव एवं हिंसा बढ़ गई।
- **संयुक्त राष्ट्र की विभाजन योजना (1947):** द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र ने फिलिस्तीन के लिये एक विभाजन योजना का प्रस्ताव रखा, जिसमें यरूशलम के लिये एक अंतर्राष्ट्रीय प्रशासन के साथ-साथ संबद्ध क्षेत्र को अलग-अलग यहूदी व अरब राज्यों में विभाजित करने की सिफारिश की गई।
- **अरब-इज़राइल युद्ध:** संयुक्त राष्ट्र की विभाजन योजना को यहूदी नेताओं ने स्वीकार कर लिया किंतु अरब नेताओं ने इसके प्रति असहमति जताई, जिससे वर्ष 1948 का अरब-इज़राइल युद्ध हुआ, जिसने संघर्ष को और अधिक तीव्र बना कर मुद्दे का राजनीतिकरण कर दिया तथा वर्ष 1967 एवं वर्ष 1973 में युद्ध की नींव रखी।
- **इज़राइल की उत्पत्ति:** युद्ध के बाद वर्ष 1948 में इज़राइल राष्ट्र की स्थापना से इस संघर्ष को नया आयाम मिला।परिणामस्वरूप हज़ारों फिलिस्तीनी अरबों को विस्थापन के लिये विवश होना पड़ा एवं इज़राइलियों और फिलिस्तीनियों के बीच तनाव बढ़ गया।

वर्तमान परिदृश्य:

- **वेस्ट बैंक मुद्दा:** इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष दशकों से जारी है, जिसमें कई युद्ध, विद्रोह, शांति वार्ता और चल रही हिंसा शामिल है। इसमें मुख्य रूप से भूखंड, शरणार्थी, यरूशलम, सुरक्षा और मान्यता जैसे मुद्दे शामिल हैं। वेस्ट बैंक में इज़रायली बस्तियों के निर्माण से भी संघर्ष बढ़ गया है, जिसे अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत अवैध माना जाता है।
- **फिलिस्तीन लिबरेशन आर्गेनाईज़ेशन (PLO) की स्थापना:** PLO की स्थापना वर्ष 1964 में फिलिस्तीनियों के हितों को कायम रखने तथा उन्हें आत्मनिर्णय का अधिकार प्रदान करने के लिये की गई थी, जिसने इज़राइल के खिलाफ कई युद्धों को प्रेरित किया एवं पड़ोसी देशों की भागीदारी ने इस मुद्दे को बहुआयामी बना दिया।
- **हमास:** वर्ष 1987 में संगठित इस संगठन ने हिंसक माध्यमों और युद्ध रणनीति का उपयोग कर दो-राष्ट्र राज्य के फिलिस्तीनी उद्देश्य एवं गाज़ा पट्टी पर उनकी पूर्ण संप्रभुता की बहाली का समर्थन करने के लिये कार्य किया है।

निष्कर्ष:

हालाँकि इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष सीधे तौर पर प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के कारण नहीं हुआ था किंतु युद्ध के कारण इसके उद्भव को आधार मिला जिसने इसकी उत्पत्ति एवं निरंतरता में अहम भूमिका निभाई। बाल्फोर घोषणा, साइक्स-पिकोट समझौता एवं द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम ने इस क्षेत्र के भू-राजनीतिक परिदृश्य तथा नृजातीय, धार्मिक और राजनीतिक विभाजन को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जो आज भी संघर्ष को बढ़ावा दे रहे हैं। यह मुद्दा बहुआयामी है तथा गहनता से जुड़ा हुआ है, ऐतिहासिक घटनाओं और चल रहे विवादों ने इसकी जटिलता में योगदान दिया है। यह मुद्दा अपनी बहुआयामी प्रकृति का है एवं इसकी गहरी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वर्तमान में चल रहे विवाद इसको और अधिक जटिल बनाते हैं।

Q19. भारत के स्वतंत्रता संग्राम में स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन के महत्त्व पर चर्चा कीजिये। प्रारंभिक राष्ट्रवादियों एवं क्रांतिकारियों की भूमिका पर इसके प्रभाव का परीक्षण कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- स्वदेशी आंदोलन और बहिष्कार आंदोलन के बारे में एक परिचय लिखिये।
- प्रारंभिक राष्ट्रवादियों पर इसके प्रभाव का उल्लेख कीजिये।
- क्रांतिकारियों की भूमिका का उल्लेख कीजिये।
- तद्नुसार निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

20वीं सदी की शुरुआत में भारत में प्रारंभ हुए **स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन** ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह आंदोलन **वर्ष 1905** में ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों द्वारा **बंगाल के विभाजन** का परिणाम था।

मुख्य भाग:

स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन ने प्रारंभिक राष्ट्रवादियों को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया और भारतीयों के बीच प्रतिरोध तथा एकता को बढ़ावा दिया:

आर्थिक आत्मनिर्भरता (स्वदेशी):

- **स्वदेशी वस्तुओं को बढ़ावा देना:** स्वदेशी आंदोलन का उद्देश्य भारत निर्मित वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा देना और ब्रिटिश निर्मित उत्पादों का बहिष्कार करना था। इसे स्वदेशी उद्योगों को पुनर्जीवित करने तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने की रणनीति के रूप में देखा गया।
- **राष्ट्रवादी चेतना:** स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहित करके आंदोलन ने भारतीय आबादी के बीच राष्ट्रवादी चेतना की भावना उत्पन्न की। यह ब्रिटिश आर्थिक शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रतीक बन गया।
- **प्रमुख हस्तियाँ:** बाल गंगाधर तिलक, बिपिन चंद्र पाल और लाला लाजपत राय जैसे नेताओं ने स्वदेशी आंदोलन का सक्रिय रूप से समर्थन एवं प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने राष्ट्रवाद के आर्थिक पहलू तथा आत्मनिर्भरता की आवश्यकता पर ज़ोर दिया।

ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार:

- **विरोध का प्रतीक:** ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार ने दमनकारी औपनिवेशिक नीतियों के विरुद्ध एक शक्तिशाली साधन के रूप में कार्य किया था। भारतीयों ने औपनिवेशिक शासन की प्रतीकात्मक अस्वीकृति के रूप में ब्रिटिश निर्मित उत्पादों को खरीदने और उनका उपयोग करने से परहेज किया।
- **सामूहिक भागीदारी:** आंदोलन में छात्रों, किसानों और शहरी मध्यम वर्ग के व्यक्तियों की व्यापक भागीदारी देखी गई, जिसने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को एक व्यापक, क्रॉस-सेक्शनल जन आंदोलन में बदल दिया।
- **ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पर प्रभाव:** बहिष्कार का ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पर ठोस प्रभाव पड़ा। इससे भारत में ब्रिटिश वस्तुओं की बिक्री में गिरावट आई, जिससे औपनिवेशिक अधिकारियों को भारतीय आबादी के बीच बढ़ते असंतोष पर ध्यान देने के लिये मजबूर होना पड़ा।

प्रारंभिक राष्ट्रवादियों पर प्रभाव:

- **राष्ट्रवादियों के बीच एकता:** स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन ने विभिन्न राजनीतिक समूहों और व्यक्तियों को एक सामान्य उद्देश्य के तहत एकजुट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने एक एकीकृत राष्ट्रवादी आंदोलन के उद्भव को चिह्नित किया।
- **राजनीतिक जागरुकता:** इस आंदोलन ने जनता को राजनीतिक रूप से जागरुक करने में योगदान दिया। परिणामस्वरूप लोग राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे, जिससे स्वशासन की मांग ने ज़ोर पकड़ा।
- **सविनय अवज्ञा के बीज:** स्वदेशी आंदोलन के दौरान अपनाए गए विरोध के तरीकों, जिनमें असहयोग और अहिंसक प्रतिरोध शामिल थे, ने भविष्य के अभियानों के लिये आधार तैयार किया, जिसमें महात्मा गांधी द्वारा स्थापित सविनय अवज्ञा आंदोलन भी शामिल है।

क्रांतिकारियों की भूमिका:

- आंदोलन शुरुआत में अहिंसक प्रतिरोध पर केंद्रित था, इसने राष्ट्रवादी आंदोलन के कुछ गुटों के बीच अधिक कट्टरपंथी और क्रांतिकारी आवेग को बढ़ावा दिया।
- शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शनों की स्पष्ट अप्रभाविता से उठी निराशा के कारण **अनुशीलन समिति और जुगंतार** जैसे अधिक उग्रवादी क्रांतिकारी समूहों का उदय हुआ, जिन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध का समर्थन किया।

निष्कर्ष:

स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने और राजनीतिक जागरूकता को आकार देने में एक महत्त्वपूर्ण अवधि को चिह्नित किया। इसने एक बड़े राष्ट्रवादी आंदोलन के लिये मंच तैयार किया, जिसकी परिणति वर्ष 1947 में भारत की स्वतंत्रता के रूप में देखी गई।

Q20. भारत में विजयनगर साम्राज्य के दौरान हुए स्थापत्य विकास का परीक्षण कीजिये। इसकी प्रमुख विशेषताओं को बताते हुए इस काल में देश के वास्तुशिल्प इतिहास पर पड़ने वाले प्रभावों पर प्रकाश डालिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- विजयनगर साम्राज्य के बारे में परिचय लिखिये।
- विजयनगर साम्राज्य की वास्तुकला से संबंधित विभिन्न विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
- भारत के इतिहास पर विजयनगर साम्राज्य की स्थापत्य कला के प्रभावों का उल्लेख कीजिये।
- तद्नुसार निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

विजयनगर साम्राज्य, जो **14वीं से 17वीं** शताब्दी तक **दक्षिण भारत** में फला-फूला, ने इस क्षेत्र के स्थापत्य इतिहास पर एक महत्त्वपूर्ण छाप छोड़ी। **विजयनगर साम्राज्य** के दौरान वास्तुशिल्प विकास को विभिन्न अवधियों के माध्यम से देखा जा सकता है, जिनमें से प्रत्येक का गुण विशिष्ट विशेषताएँ और शैलियाँ हैं।

मुख्य भाग:

प्रारंभिक चरण (1336-1446):

- **मंदिर:**
  - **हम्पी: विजयनगर साम्राज्य** की राजधानी, **हम्पी,** विशाल मंदिर स्थापत्य का केंद्र बन गई। भगवान शिव को समर्पित विरुपाक्ष मंदिर इस काल का एक प्रमुख उदाहरण है, जो **होयसल** और **चालुक्य शैलियों** का मिश्रण प्रदर्शित करता है।
  - **अच्युतराय मंदिर:** अपने प्रभावशाली स्तंभों वाले कक्ष के लिये जाना जाने वाला यह मंदिर समृद्ध नक्काशीदार स्तंभों के साथ प्रारंभिक विजयनगर शैली को प्रदर्शित करता है।
- **शहर नियोजन:**
  - **शहरी संरचना:** प्रारंभिक **विजयनगर स्थापत्य** शहर नियोजन पर केंद्रित था। **हम्पी का लेआउट** बाज़ारों, आवासीय स्थानों और धार्मिक संरचनाओं के लिये निर्दिष्ट क्षेत्रों के साथ एक सुव्यवस्थित शहर को दर्शाता है।

(1446-1565): परिपक्व काल (1446-1565):

- **मंदिर और स्मारक:**
  - **विट्ठल मंदिर:** अपने प्रसिद्ध पत्थर के रथ और संगीतमय स्तंभों के लिये जाना जाने वाला, विट्ठल मंदिर विजयनगर स्थापत्य के शिखर का उदाहरण है। राया गोपुरम और अलंकृत नक्काशी इसकी भव्यता में योगदान करती है।
  - **कृष्ण मंदिर: भगवान कृष्ण** को समर्पित यह मंदिर, जटिल नक्काशी और एक सीढ़ीनुमा पिरामिड संरचना को दर्शाता है, जो विकसित होती द्रविड़ शैली का प्रदर्शन करता है।
- **शाही बाड़ा:**
  - **कमल महल: हिंदू** और **इस्लामी स्थापत्य का** एक अनूठा मिश्रण, कमल महल इस अवधि के दौरान धर्मनिरपेक्ष वास्तुकला का उदाहरण है। इसमें कमल के आकार का गुंबद और मेहराब बने हुए हैं।
- **किले और सैन्य स्थापत्य:**
  - **कृष्णदेव राय के किले की दीवार:** रक्षात्मक संरचनाओं को मज़बूत करना **विजयनगर स्थापत्य** का एक अभिन्न अंग था। **कृष्णदेव राय द्वारा** निर्मित किलेबंदी ने रक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उत्तर चरण (1565-1646):

- **धार्मिक स्थापत्य:**
  - **वीरभद्र मंदिर: विजयनगर साम्राज्य के अंत** में निर्मित यह मंदिर **विजयनगर** और **नायक स्थापत्य शैली** का मिश्रण प्रदर्शित करता है। इसकी स्तंभ और मूर्तियाँ जटिल शिल्प कौशल की परंपरा को व्यक्त करती हैं।
- **पतन और प्रभाव:**
  - **हम्पी का पतन (1565):** वर्ष 1565 में **तालीकोटा युद्ध** के पश्चात् साम्राज्य को पतन का सामना करना पड़ा, जिससे **हम्पी** का विनाश हुआ। पतन के बावजूद, विजयनगर स्थापत्य ने क्षेत्र में बाद के राज्यों, जैसे मदुरै और तंजौर के नायकों को प्रभावित करना जारी रखा।

स्थापत्य इतिहास पर प्रभाव:

- **मंदिर स्थापत्य में नवाचार:** विजयनगर साम्राज्य ने नए तत्त्वों और शैलियों को पेश करके द्रविड़ मंदिर स्थापत्य के विकास में योगदान दिया है।
- **शहरी संरचना:** हम्पी के संगठित लेआउट ने क्षेत्र में बाद की शहरी संरचना को प्रभावित किया, जो शहरी विकास के लिये एक मॉडल के रूप में कार्य कर रहा था।
- **मिश्रित शैली:** विजयनगर स्थापत्य की विशेषता विभिन्न क्षेत्रीय शैलियों का मिश्रण है, जो विविध सांस्कृतिक और कलात्मक प्रभावों का सामंजस्यपूर्ण मिश्रण प्रदर्शित करती है।
- **सैन्य स्थापत्य:** गढ़वाली संरचनाओं और सैन्य स्थापत्य पर ज़ोर दिये जाने से इसने दक्कन क्षेत्र के राज्यों को प्रभावित किया।

निष्कर्ष:

विजयनगर साम्राज्य के पतन के दौरान इसकी स्थापत्य विरासत कायम रही, जिसने दक्षिण भारत के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिदृश्य को प्रभावित किया। शेष स्मारक साम्राज्य की भव्यता एवं रचनात्मक उपलब्धियों के प्रमाण के रूप में स्थित हैं।

Q21. प्रथम विश्व युद्ध ने स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन को किस प्रकार प्रभावित किया था। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इस महत्त्वपूर्ण चरण में प्रारंभिक राष्ट्रवादियों एवं क्रांतिकारियों ने क्या योगदान दिया था? (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन पर प्रथम विश्व युद्ध के व्यापक प्रभाव और स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा निभाई गई व्यापक भूमिका का संक्षेप में परिचय लिखिये।
- प्रथम विश्व युद्ध का स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन पर प्रभाव लिखिये।
- नेतृत्वकर्त्ताओं की भूमिका का उल्लेख कीजिये।
- यह बताते हुए निष्कर्ष लिखिये कि इसने स्वतंत्रता संग्राम के भविष्य के पथ को कैसे आकार दिया।

परिचय:

प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) का भारत पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिससे देश के स्वतंत्रता संघर्ष में एक प्रमुख कड़ी के रूप में स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन को बढ़ावा मिला। आर्थिक कठिनाइयों और आत्मनिर्णय की इच्छा से प्रेरित, इस आंदोलन का नेतृत्व शुरुआती राष्ट्रवादियों एवं क्रांतिकारियों ने किया, जिन्होंने युद्ध के दौरान भारतीय आंदोलन की कहानी को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निकाय:

स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन पर प्रथम विश्व युद्ध का प्रभाव:

- **आर्थिक व्यवधान:**
  - युद्ध के कारण वैश्विक अर्थव्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न हुआ, जिससे भारत के व्यापार और वाणिज्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।
  - ब्रिटिश सरकार ने ऐसी आर्थिक नीतियाँ लागू कीं, जिससे भारतीयों की आर्थिक कठिनाइयाँ और बढ़ गईं।
  - बढ़ती महँगाई और वस्तुओं की कमी ने जनता के असंतोष को बढ़ाया।
- **राष्ट्रवादी भावनाएँ:**
  - युद्ध ने राष्ट्रवादी भावनाओं और आत्मनिर्भरता की इच्छा जागृत की।
  - भारतीयों ने संकट के दौरान अपनी आर्थिक चिंताओं को दूर करने में साम्राज्यवादी शक्ति की विफलता से विश्वासघात महसूस किया।
  - आत्मनिर्भरता और स्वशासन की आवश्यकता को प्रमुखता मिली।
- **स्वदेशी आंदोलन का पुनरुद्धार:**
  - स्वदेशी आंदोलन, जो प्रारंभ में वर्ष 1905 में बंगाल के विभाजन के जवाब में उभरा, में पुनरुत्थान का अनुभव किया।
  - भारतीयों से स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने का आग्रह किया गया।
  - चरखा आत्मनिर्भरता का प्रतीक बन गया, जिसे महात्मा गांधी ने लोकप्रिय बनाया।
- **ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार:**
  - ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार के आह्वान को व्यापक समर्थन मिला।
  - बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन, विदेशी वस्तुओं को सार्वजनिक रूप से जलाना, असहयोग आंदोलन के अभिन्न अंग बन गए।
  - औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार ने अहिंसक प्रतिरोध का रूप ले लिया।

प्रारंभिक राष्ट्रवादियों और क्रांतिकारियों का योगदान:

- **महात्मा गांधी का नेतृत्व:**
  - गांधीजी का अहिंसक आंदोलन (सत्याग्रह) दार्शनिक आंदोलन का मार्गदर्शक सिद्धांत बन गया।
  - उन्होंने आत्मनिर्भरता के महत्त्व पर ज़ोर दिया और भारतीयों से चरखे का उपयोग करके अपना वस्त्र स्वयं निर्माण करने का आग्रह किया।
- **बाल गंगाधर तिलक की भूमिका:**
  - तिलक का आह्वान "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा" जनता के बीच गूँज उठा।
  - उन्होंने अपने लेखन और भाषणों के माध्यम से ब्रिटिश शासन के विरुद्ध राष्ट्रवाद एवं विरोधी भावना को प्रेरित किया।
- **बिपिन चंद्र पाल का योगदान:**
  - जनता को एकजुट करने और स्वदेशी उद्योगों को बढ़ावा देने के पाल के प्रयासों ने स्वदेशी आंदोलन में योगदान दिया।
  - उन्होंने आर्थिक निर्भरता से मुक्त होने के साधन के रूप में आत्मनिर्भरता का समर्थन किया।
- **क्रांतिकारी आंदोलन:**
  - भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के विचार से प्रेरित अन्य क्रांतिकारियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

- काकोरी कांड, जलियाँवाला बाग हत्याकांड और चटगाँव शस्त्रागार छापा क्रांतिकारी आंदोलन के उल्लेखनीय उदाहरण थे।

निष्कर्ष:

प्रथम विश्व युद्ध ने भारत में स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन को उत्प्रेरित किया, जिसने जनता के असंतोष को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एकीकृत संघर्ष में परिवर्तित कर दिया। इस महत्त्वपूर्ण अवधि के दौरान शुरुआती राष्ट्रवादियों और क्रांतिकारियों के योगदान ने आगामी वर्षों में अधिक मुखर और संगठित स्वतंत्रता आंदोलन की नींव रखी।

Q22. ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय कला पर उपनिवेशवाद के प्रभाव का मूल्यांकन कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- ब्रिटिश भारत के दौरान भारत में उपनिवेशवाद का संक्षिप्त परिचय लिखिये।
- भारतीय कला पर उपनिवेशवाद के प्रभाव का मूल्यांकन कीजिये।
- तद्नुसार निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय कला पर उपनिवेशवाद का गहरा और बहुआयामी प्रभाव देखा गया, जिसमें संरक्षण, विषयवस्तु, शैली तथा सामाजिक-आर्थिक संदर्भ जैसे विभिन्न पहलू शामिल थे। भारत में ब्रिटिश शासन की अवधि, 19वीं शताब्दी के मध्य से वर्ष 1947 तक, ने भारतीय कला के प्रक्षेप पथ को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया।

मुख्य भाग:

- **संरक्षण और संस्थागत परिवर्तन:**
  - औपनिवेशिक काल में कला के लिये पारंपरिक संरक्षण प्रणाली में बदलाव देखा गया, जो पहले शाही न्यायालयों और स्थानीय शासकों के आसपास केंद्रित थी। ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों ने यूरोपीय स्वाद (tastes) और सौंदर्यशास्त्र के साथ संरेखित रूपों की ओर धन एवं समर्थन को पुनर्निर्देशित किया।
  - कलात्मक विद्यालय और अकादमियाँ जैसी संस्थाएँ ब्रिटिश प्रभाव में स्थापित की गईं।
    - इन संस्थानों का उद्देश्य औपचारिक प्रशिक्षण प्रदान करना था, उन्होंने प्राय: पश्चिमी कलात्मक सिद्धांतों को बढ़ावा दिया, जिससे भारतीय कला के शैक्षिक परिदृश्य में बदलाव आया।
- **विषयवस्तु और प्रतिनिधित्व:**
  - औपनिवेशिक कला ने भारतीय कला की विषयवस्तु को प्रभावित किया। ऐतिहासिक घटनाएँ, औपनिवेशिक अधिकारियों के चित्र और ब्रिटिश औपनिवेशिक उपस्थिति को दर्शाने वाले दृश्य इस कला में प्रमुख बन गए।
  - ब्रिटिश राज के दौरान कला में भारतीय विषयों को प्राय: यूरोकेंद्रित दृष्टिकोण से चित्रित किया जाता था।
- **समन्वयवाद और अनुकूलन:**
  - उपनिवेशवाद के द्वारा उत्पन्न चुनौतियों के बावजूद, समन्वयवाद और अनुकूलन इसके उदाहरण थे।
  - कुछ भारतीय कलाकारों ने अपने काम में पश्चिमी तकनीकों और शैलियों को शामिल किया, जिससे कलात्मक अभिव्यक्ति का एक मिश्रित रूप तैयार हुआ।
  - अवनींद्रनाथ टैगोर और नंदलाल बोस जैसी शख्सियतों के नेतृत्व में बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट ने पश्चिमी कला के तत्त्वों को शामिल करते हुए पारंपरिक भारतीय कलात्मक रूपों को पुनर्जीवित करने की मांग की।
  - इस आंदोलन का उद्देश्य औपनिवेशिक प्रभावों के परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक पहचान की भावना पर ज़ोर देना था।
- **कलात्मक तकनीकों और सामग्रियों पर प्रभाव:**
  - पश्चिमी कलात्मक तकनीकों, सामग्रियों की शुरुआत का भारतीय कला पर स्थायी प्रभाव पड़ा।
  - उदाहरण के लिये, ऑइल पेंटिंग ने टेम्परा जैसे पारंपरिक माध्यमों का स्थान लेते हुए प्रमुखता प्राप्त की। सामग्रियों में इस बदलाव ने भारतीय कला के दृश्यात्मक सौंदर्यशास्त्र को प्रभावित किया।
- **आर्थिक कारक और कला बाज़ार:**
  - औपनिवेशिक काल में महत्त्वपूर्ण आर्थिक परिवर्तन हुए, जिसका प्रभाव कला बाज़ार पर पड़ा। पारंपरिक संरक्षण प्रणालियाँ कम हो गईं और कलाकारों को प्राय: परिवर्तित बाज़ार की मांगों के अनुरूप ढलना पड़ा। इस परिवर्तन का प्रभाव विषयों और कलात्मक शैलियों की रुचि पर पड़ा।

निष्कर्ष:

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय कला पर उपनिवेशवाद का जटिल प्रभाव देखा गया, जिसमें अनुकूलन, प्रतिरोध और संवाद का मिश्रण शामिल था। हालाँकि इससे पारंपरिक कलात्मक प्रथाओं के समक्ष चुनौतियाँ के साथ बदलाव देखे गए, लेकिन इसने कलात्मक अभिव्यक्ति के नवीन रूपों के उद्भव का मार्ग भी प्रशस्त किया, जिसने औपनिवेशिक संदर्भ में सांस्कृतिक पहचान की जटिलताओं को दूर करने का प्रयास किया।

Q23. भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में सविनय अवज्ञा आंदोलन के महत्त्व पर चर्चा कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- सविनय अवज्ञा आंदोलन का संक्षिप्त परिचय लिखिये।
- स्वतंत्रता संघर्ष पर सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रभाव का उल्लेख कीजिये।
- तद्नुसार निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

सविनय अवज्ञा आंदोलन जो वर्ष 1930-1934 तक भारत में चला, देश के स्वतंत्रता संग्राम में अत्यधिक महत्त्व रखता है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में इस अहिंसा विरोधी अभियान का उद्देश्य ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को चुनौती देना और आत्मनिर्भरता, असहयोग एवं अहिंसा विरोधी सिद्धांतों को बढ़ावा देना था।

मुख्य भाग:

आंदोलन के महत्त्व के कुछ मुख्य बिंदु:

- **जन लामबंदी और एकता:**
  - यह आंदोलन किसानों, श्रमिकों, छात्रों, महिलाओं एवं शहरी मध्यम वर्ग सहित भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को एकजुट करने में सफल रहा। इस व्यापक भागीदारी ने एकता और राष्ट्रीय चेतना की भावना को बढ़ावा दिया।
- **ब्रिटिश सत्ता को चुनौती:**
  - सविनय अवज्ञा ने जानबूझकर नमक कानून, वन कानून, मद्य निषेध और विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार जैसे दमनकारी ब्रिटिश कानूनों का उल्लंघन किया। सविनय अवज्ञा के इस कृत्य ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की वैधता और अधिकार को चुनौती दी।
- **पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थन:**
  - ब्रिटिश नीतियों की शोषणकारी प्रकृति को उजागर करके, आंदोलन ने भारतीय जनता के बीच पूर्ण स्वतंत्रता या "पूर्ण स्वराज" की मांग को प्रज्वलित किया।
- **एक शक्तिशाली साधन के रूप में अहिंसा:**
  - आंदोलन ने जनता को शस्त्र के रूप में अहिंसा की शक्ति प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप इसकी प्रभावशीलता का प्रदर्शन हुआ। ब्रिटिश सेना के क्रूर दमन और हिंसा का सामना करने के बावजूद, भारतीयों ने अहिंसावादी सिद्धांतों का पालन करके नैतिक श्रेष्ठता एवं साहस बनाए रखा।
- **बाद की घटनाओं पर प्रभाव:**
  - सविनय अवज्ञा आंदोलन का स्वतंत्रता आंदोलन और ब्रिटिश सरकार के साथ समन्वय को लेकर काफी प्रभाव देखा गया। इसने अंग्रेज़ों को भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन को एक महत्त्वपूर्ण और वैध शक्ति के रूप में स्वीकार करने के लिये मजबूर किया।
- **स्वतंत्रता की राह:**
  - इस आंदोलन ने स्वतंत्रता के लिये भारत के संघर्ष पथ को आकार देने, गांधी-इरविन समझौता, द्वितीय गोलमेज़ सम्मेलन जैसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का मार्ग प्रशस्त करने और अंततः वर्ष 1947 में भारत को स्वतंत्रता हासिल करने में योगदान देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निष्कर्ष:

सविनय अवज्ञा आंदोलन ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर एक अमिट छाप छोड़ी। जन लामबंदी, अहिंसा विरोधी और पूर्ण स्वायत्तता की मांग के माध्यम से इसने न केवल ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी, बल्कि महत्त्वपूर्ण वार्ताओं के लिये मंच भी तैयार किया, जिससे अंततः वर्ष 1947 में भारत की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त हुआ।

Q24. आधुनिक भारत में सुधार आंदोलनों के उद्भव में योगदान देने वाले सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों का विश्लेषण कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- आधुनिक भारत के सुधार आंदोलनों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
- आधुनिक भारत के सुधार आंदोलनों के उद्भव में योगदान देने वाले सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों का उल्लेख कीजिये।
- उचित निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

आधुनिक भारत में 19वीं और 20वीं सदी की शुरुआत में शुरू हुए सुधार आंदोलन औपनिवेशिक शासन, सामाजिक अन्याय, शिक्षा के प्रसार एवं राष्ट्रवादी उत्साह आदि से प्रेरित थे। उनका लक्ष्य दोषपूर्ण रीति-रिवाजों और सामाजिक कुरीतियों को त्यागकर धर्मों को आधुनिक बनाना तथा भारतीय धर्मों की शुद्धता को पुनर्जीवित करना था।

मुख्य भाग:

आधुनिक भारत में सुधार आंदोलन के उद्भव में योगदान देने वाले कुछ सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारक:

- **सामाजिक-राजनीतिक कारक**
  - अंग्रेजों ने अंग्रेजी भाषा तथा स्वतंत्रता, लोकतंत्र एवं न्याय के आधुनिक विचार प्रस्तुत किये थे। उदाहरण के लिये ब्रह्म समाज

के संस्थापक राजा राम मोहन राय, बौद्धिक एवं फ्रांसीसी क्रांति के विचारों से प्रभावित होने के साथ तर्क एवं मानवतावाद पर आधारित सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों की वकालत करते थे। उन्होंने अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों, जैसे प्रेस पर कर लगाने आदि का भी विरोध किया।

- भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक और सामाजिक कुरीतियाँ, जैसे अंधविश्वास, जाति व्यवस्था एवं महिलाओं पर अत्याचार। उदाहरण के लिये, यंग बंगाल आंदोलन के एक प्रमुख नेता ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने बाल विवाह के उन्मूलन एवं विधवा पुनर्विवाह को वैध बनाने के लिये संघर्ष किया तथा महिलाओं एवं निम्न जातियों के लिये स्कूलों की भी स्थापना की।
- राष्ट्रवादी भावनाओं के विकास एवं नई आर्थिक शक्तियों के उदय से ब्रिटिश शासन को चुनौती मिलने के साथ भारतीयों के लिये अधिक अधिकारों एवं प्रतिनिधित्व की मांग की गई। उदाहरण के लिये, होम रूल आंदोलन के एक प्रमुख नेता बाल गंगाधर तिलक ने स्व-शासन एवं स्वराज की वकालत की तथा ब्रिटिश शोषण के खिलाफ किसान और श्रमिक आंदोलनों का भी समर्थन किया।

- **आर्थिक कारक**
  - ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के प्रभाव से भारतीय उद्योगों, कृषि और व्यापार का पतन हुआ। उदाहरण के लिये, भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के एक प्रमुख नेता दादाभाई नौरोजी ने भारत से ब्रिटेन को होने वाले धन के अंतरण की गणना की और भारत के ब्रिटिश शोषण को उजागर किया।
  - अंग्रेजों द्वारा भारतीय संसाधनों का शोषण किया गया, जिसके परिणामस्वरूप गरीबी, अकाल के साथ ऋणग्रस्तता की स्थिति हुई। उदाहरण के लिये, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नेता महात्मा गांधी ने अंग्रेजों की दमनकारी कराधान और भूमि राजस्व नीतियों के विरोध के साथ अकाल एवं सूखे से पीड़ित किसानों का समर्थन करने के लिये चंपारण एवं खेड़ा सत्याग्रह की शुरूआत की।
  - शिक्षित, शहरी और पेशेवर के रूप में सामाजिक और आर्थिक सुधार चाहने वाले एक नए मध्यम वर्ग का उदय हुआ था। उदाहरण के लिये, भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के एक प्रमुख नेता गोपाल कृष्ण गोखले ने संवैधानिक सुधारों की वकालत करने के साथ लोक सेवा एवं सामाजिक कल्याण के लिये भारतीयों को प्रशिक्षित करने हेतु सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी की स्थापना की थी।
- **सांस्कृतिक कारक**
  - शिक्षा के प्रसार और विश्व में जागरूकता बढ़ने से भारत के अतीत के गौरव पर गर्व की भावना एवं इसकी वर्तमान स्थिति में सुधार की इच्छा पैदा हुई। उदाहरण के लिये, रामकृष्ण मिशन के संस्थापक स्वामी विवेकानन्द ने वेदांत एवं हिंदू धर्म के संदेश का प्रचार करने के साथ समाज सेवा एवं राष्ट्रीय उत्थान की आवश्यकता पर भी बल दिया।
  - आधुनिक पश्चिमी विचारों एवं संस्कृति के प्रभाव से भारतीय समाज के पारंपरिक मूल्यों एवं रीति-रिवाजों को चुनौती मिली। उदाहरण के लिये, शांति निकेतन के संस्थापक रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा की एक नई प्रणाली शुरू की जो स्वतंत्रता, रचनात्मकता एवं सद्भाव के सिद्धांतों पर आधारित थी तथा इसमें पूर्व एवं पश्चिम के सर्वोत्तम तत्वों का मिश्रण भी शामिल था।
  - प्राचीन भारतीय परंपराओं और विचारों के पुनरुद्धार से सुधारकों को भारतीय धर्मों की शुद्धता एवं प्रामाणिकता को बहाल करने की प्रेरणा मिली। उदाहरण के लिये, आर्य समाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती ने वेदों की ओर लौटने के साथ हिंदू धर्म के सुधार एवं पुनरुद्धार की वकालत की, तथा हिंदू धर्म को दूषित करने वाले मूर्तिपूजा, जातिवाद और कर्मकांड का विरोध किया। इसी तरह, अलीगढ़ आंदोलन के संस्थापक सैयद अहमद खान ने इस्लाम में सुधार एवं इसके पुनरुद्धार की वकालत की।

निष्कर्ष:

आधुनिक भारत में सुधार आंदोलन सामाजिक अन्याय का समाधान करने, तर्कसंगतता को बढ़ावा देने तथा राष्ट्रीय पहचान को बढ़ावा देने में सहायक साबित हुए थे। इन्होंने स्वतंत्रता के लिये भारत के संघर्ष की नींव रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और समकालीन सामाजिक परिवर्तन एवं प्रगति को प्रेरित किया।

Q25. प्राचीन भारत के सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन को आकार देने में सिंधु घाटी सभ्यता के महत्त्व पर चर्चा कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- सिंधु घाटी सभ्यता (IVC) का परिचय देते हुए उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- प्राचीन काल में IVC के महत्त्व पर चर्चा कीजिये।
- प्राचीन भारत के सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन को आकार देने में IVC की प्रासंगिकता का विश्लेषण कीजिये।
- उचित निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

सिंधु घाटी सभ्यता (जिसे हड़प्पा सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है) प्राचीन भारत की सबसे पुरानी शहरी सभ्यताओं में से एक थी। यह सिंधु नदी बेसिन में विकसित हुई, जो वर्तमान पाकिस्तान, उत्तर-पश्चिम

भारत और अफगानिस्तान तथा ईरान के कुछ हिस्सों तक विस्तारित थी। लगभग 3300 ईसा पूर्व से 1300 ईसा पूर्व तक रही इस सभ्यता ने प्राचीन भारत के सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मुख्य भाग:

सांस्कृतिक महत्त्व:

- **शहरी नियोजन:**
  - IVC, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे नियोजित शहरों की तरह थी, जिनमें अच्छी सड़कें, जल निकासी प्रणालियाँ एवं उन्नत जल प्रबंधन तकनीकें शामिल थीं।
  - इस तरह की योजना ने भारत में बाद की शहरी बस्तियों के लिये आधार तैयार किया।
- **लिपि और संचार:**
  - सिंधु सभ्यता की लिपि से संचार की एक विकसित प्रणाली के संकेत मिलते हैं।
  - हालाँकि इसको पढ़ा नहीं जा सका है लेकिन यह भाषा एवं लेखन में इस सभ्यता की प्रगति को रेखांकित करती है।
- **कलाकृतियाँ:**
  - सिंधु सभ्यता की मुहरें, मिट्टी के बर्तन और मूर्तियाँ जैसी कलाकृतियाँ एक समृद्ध कलात्मक परंपरा को प्रदर्शित करती हैं, जिनमें जानवरों, मानव आकृतियों तथा जटिल प्रतिरूप का अंकन है।
  - यह कलात्मक विरासत इस सभ्यता की सौंदर्य संबंधी संवेदनाओं एवं सांस्कृतिक गहराई को दर्शाती हैं।
- **धर्म और अनुष्ठान:**
  - पुरातात्त्विक खोजों से देवताओं, अनुष्ठान प्रथाओं और औपचारिक स्थलों पर केंद्रित एक विश्वास प्रणाली का संकेत मिलता है।
  - अग्नि वेदियों और मूर्तियों (जैसे पशुपति मुहरों की उपस्थिति) से धार्मिक अनुष्ठानों के संकेत मिलते हैं, जो प्राचीन भारतीय आध्यात्मिकता के संबंध में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

आर्थिक महत्त्व:

- **व्यापार नेटवर्क:**
  - IVC के मेसोपोटामिया, मध्य एशिया और अरब प्रायद्वीप जैसे क्षेत्रों के साथ व्यापक व्यापार संबंध थे, जिसका प्रमाण मोतियों, चीनी मिट्टी की वस्तुओं एवं धातुओं से मिलता है। इस व्यापार ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा आर्थिक समृद्धि को सुविधाजनक बनाया।

- **कृषि पद्धतियाँ:**
  - सिंधु नदी के उपजाऊ मैदानों में कृषि को बढ़ावा मिला, जहाँ गेहूँ, जौ और कपास की कृषि के प्रमाण मिले हैं।
  - उन्नत सिंचाई प्रणालियों ने कुशल कृषि उत्पादन को सक्षम बनाया, जिससे इस सभ्यता की आर्थिक स्थिरता में योगदान मिला।
- **शिल्प कौशल और उद्योग:**
  - मिट्टी के बर्तनों, धातुकर्म और वस्त्रों के उत्पादन में कौशल देखने को मिलता है।
  - इस दौरान मनके बनाने और धातुकर्म जैसे विशिष्ट उद्योग फले-फूले, जो सभ्यता की आर्थिक विविधता एवं तकनीकी कौशल को प्रदर्शित करते हैं।
- **मानकीकृत बाट और माप:**
  - मानकीकृत बाटों और मापों की उपस्थिति, व्यापार एवं वाणिज्य की एक विनियमित प्रणाली का सुझाव देती हैं।
  - ऐसी एकरूपता एक ऐसी सुव्यवस्थित आर्थिक संरचना का संकेत देती है, जो इस सभ्यता की सीमाओं के भीतर और बाहर व्यावसायिक गतिविधियों को सुविधाजनक बनाती है।

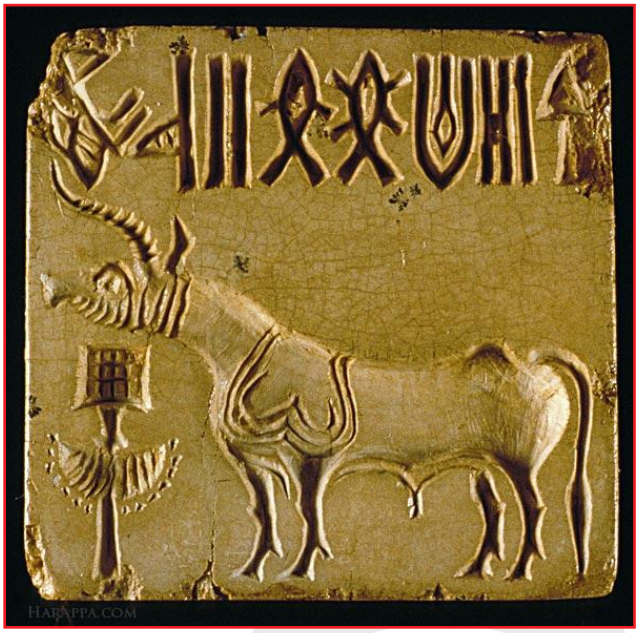

सामाजिक महत्त्व:

- **शहरी समाज:**
  - इस समय में नियोजित शहरों की उपस्थिति से शासन प्रणाली, सार्वजनिक बुनियादी ढाँचे तथा सामाजिक पदानुक्रम के साथ एक संरचित शहरी समाज का संकेत मिलता है।
  - इस संगठित शहरी जीवन से यहाँ के निवासियों के बीच सामुदायिक एवं नागरिक ज़िम्मेदारी की भावना को बढ़ावा मिला।
- **जातिगत भूमिकायें:**
  - यहाँ की कलाकृतियाँ लिंग-विशिष्ट भूमिकाओं को दर्शाती हैं, जिसमें विभिन्न गतिविधियों में लगे पुरुष और महिलाओं से संबंधित चित्रण शामिल हैं।
  - इस समय जहाँ पुरुष शिकार और युद्ध से संबंधित थे, वहीं महिलाएँ संभवत: घरेलू कामकाज एवं शिल्प उत्पादन में शामिल थीं, जो उस समय के सामाजिक मानदंडों के परिचायक हैं।
- **दफन प्रणाली:**
  - इस समय के दफन स्थल सामाजिक स्तरीकरण में अंतर्दृष्टि प्रदान करने के साथ दफन प्रथाओं में भिन्नताएँ, सामाजिक स्थिति में अंतर का संकेत देती हैं।
  - इसमें अन्य वस्तुओं की उपस्थिति मृत्यु के बाद के जीवन के साथ धन एवं स्थिति के आधार पर सामाजिक अंतर का संकेत देती हैं।

निष्कर्ष:

सिंधु घाटी सभ्यता प्राचीन भारतीय सभ्यता की सरलता एवं उपलब्धियों के प्रमाण की परिचायक है। इसका सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक महत्त्व भारतीय इतिहास को आकार देने के साथ उपमहाद्वीप में हुए बाद के विकास का आधार बना।

Q26. भारत में मुगल साम्राज्य के पतन तथा उत्तराधिकारी राज्यों के उदय हेतु उत्तरदायी विभिन्न कारकों का परीक्षण कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- मुगल साम्राज्य और उसके पतन के बारे में बताते हुए उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- उन कारकों की चर्चा कीजिये जिनके कारण मुगल साम्राज्य का पतन हुआ था।
- मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भारत में उत्तराधिकारी राज्यों के उद्भव पर प्रकाश डालिये।
- उचित निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

मुगल साम्राज्य (जो 16वीं सदी की शुरुआत से 19वीं सदी के मध्य तक अस्तित्त्व में था) भारतीय इतिहास में सबसे शक्तिशाली और प्रभावशाली साम्राज्यों में से एक था। यह अकबर के शासनकाल में अपने चरम पर पहुँच गया, उसके बाद इसका पतन होना शुरू हो गया, जिससे भारत के विभिन्न भागों में उत्तराधिकारी राज्य के रूप में कई साम्राज्यों का उदय हुआ।

मुख्य भाग:

मुगल साम्राज्य के पतन हेतु उत्तरदायी कारक:

- **आर्थिक कारक:**
  - **कृषि संकट:** मुगल साम्राज्य में भू-राजस्व की अत्यधिक मांग जैसे कारकों से कृषि स्थिरता पर संकट आया जिसके कारण कृषि उत्पादकता के साथ ग्रामीण समृद्धि में गिरावट आई।
  - **राजस्व प्रणाली:** समय के साथ जागीरदारी और ज़मींदारी प्रणालियों का बोझ बढ़ने से किसानों में असंतोष पैदा हुआ जिससे साम्राज्य के राजस्व संग्रह में गिरावट आई।
  - **व्यापार और वाणिज्य में गिरावट:** ब्रिटिश, डच और पुर्तगाली जैसी यूरोपीय शक्तियों के उद्भव के कारण प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर मुगल साम्राज्य का नियंत्रण कमज़ोर हो गया, जिससे व्यापार से होने वाले राजस्व में गिरावट आई।

- **धन की निकासी:** कुलीनों की असाधारण जीवनशैली, एक बड़ी सेना को बनाए रखने की लागत तथा यूरोपीय शक्तियों के साथ व्यापार करने के क्रम में कीमती धातुओं के बहिर्वाह के कारण साम्राज्य की संपत्ति में कमी आई थी।

- **प्रशासनिक कारक:**
  - **कमज़ोर उत्तराधिकारी:** औरंगज़ेब के शासनकाल के बाद कमज़ोर शासक हुए जो साम्राज्य की एकता और स्थिरता को बनाए रखने में असमर्थ थे।
  - **सत्ता का विकेंद्रीकरण:** साम्राज्य की प्रशासनिक संरचना का तेज़ी से विकेंद्रीकरण हुआ, इससे प्रांतीय गवर्नरों को अधिक स्वायत्तता मिल गई, जिससे मुगल सम्राट की केंद्रीय शक्ति कमज़ोर हो गई।
- **राजनीतिक कारक:**
  - **क्षेत्रीय विद्रोह:** साम्राज्य के भीतर विभिन्न क्षेत्रों जैसे- दक्कन, बंगाल और अवध ने अपनी स्वतंत्रता का दावा शुरू करने के साथ मुगल सत्ता को चुनौती दी, जिससे साम्राज्य का विखंडन हुआ।
  - बाहरी आक्रमण: मुगल साम्राज्य को फारसी और अफगान शासकों जैसी विभिन्न बाहरी शक्तियों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा था, जिससे इस साम्राज्य की शक्ति में कमज़ोरी आई थी।
- **सामाजिक और सांस्कृतिक कारक:**
  - **धार्मिक असहिष्णुता:** औरंगज़ेब की नीतियों (जिन्होंने गैर-मुसलमानों पर प्रतिबंध लगाए और अन्य धर्मों पर अत्याचार किया) ने आबादी के बड़े हिस्से को अलग-थलग कर दिया जिससे आंतरिक कलह को बढ़ावा मिला।
  - **सामाजिक विविधता:** मुगल साम्राज्य एक जटिल सामाजिक पदानुक्रम वाला एक विविध साम्राज्य था जिसमें विभिन्न समुदायों एवं जातियों को एकीकृत करने में विफलता के कारण सामाजिक अशांति उत्पन्न हुई।

उत्तराधिकारी शासकों का उदय:

- **मराठों का उदय:**
  - शिवाजी और बाद में पेशवाओं के नेतृत्व में मराठाओं का पश्चिमी भारत में एक प्रभावी शक्ति के रूप में उदय हुआ।
  - उनकी गुरिल्ला युद्ध रणनीति तथा मज़बूत प्रशासनिक प्रणालियों ने मुगल सत्ता को चुनौती देने में सक्षम बनाया।
  - मराठों ने वर्तमान महाराष्ट्र और आस-पास के क्षेत्रों के बड़े हिस्से पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।
- **सिख शक्ति का विस्तार:**
  - सिख मिस्लों ने पंजाब में अपना अधिकार स्थापित करने के लिये कमज़ोर होते मुगल साम्राज्य का फायदा उठाया।
  - बंदा बहादुर सिंह जैसे शासकों के नेतृत्व में सिखों ने खुद को सैन्य संघों में संगठित किया और महाराजा रणजीत सिंह के अधीन सिख साम्राज्य की नींव रखी।
- **क्षेत्रीय शक्तियों का उदय:**
  - मुगल काल के बाद बंगाल, अवध और हैदराबाद के नवाबों सहित विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियाँ प्रभावशाली शक्तियों के रूप में उभरीं।
  - इन क्षेत्रीय शक्तियों ने अपनी स्वायत्तता पर बल देने तथा अपने क्षेत्रों का विस्तार करने के लिये मुगलों के पतन का फायदा उठाया।
  - उदाहरण के लिये बंगाल के नवाबों ने मुगल आधिपत्य को चुनौती देकर महत्त्वपूर्ण आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति हासिल की।
- **यूरोपीय औपनिवेशिक शक्ति का हस्तक्षेप:**
  - मुगल साम्राज्य के पतन से यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों के लिये भारत के कुछ हिस्सों पर नियंत्रण स्थापित करने का मार्ग भी प्रशस्त हो गया।
  - ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिये राजनीतिक विखंडन एवं आर्थिक अस्थिरता का फायदा उठाया, जिसके परिणामस्वरूप अंततः भारतीय उपमहाद्वीप पर ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन स्थापित हुआ।

निष्कर्ष:

मुगल साम्राज्य का पतन आर्थिक, प्रशासनिक, सैन्य और सामाजिक-धार्मिक कारकों से प्रभावित एक जटिल प्रक्रिया थी। इसके पतन से विभिन्न उत्तराधिकारी राज्यों के साथ यूरोपीय शक्तियों के लिये भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित करने के अवसर मिले, जिससे आने वाले समय में भारतीय इतिहास की दिशा तय हुई।

Q27. फ्राँसीसी क्रांति के लिये उत्तरदायी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कारकों का परीक्षण करते हुए वैश्विक शासन एवं सामाजिक पुनर्गठन पर इसके दीर्घकालिक महत्त्व का मूल्यांकन कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण :

- फ्राँसीसी क्रांति का परिचय देते हुए उत्तर प्रारंभ कीजिये।
- फ्राँसीसी क्रांति के लिये अग्रणी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारकों का वर्णन कीजिये।
- वैश्विक शासन और सामाजिक पुनर्गठन पर इसके दीर्घकालिक महत्त्व का मूल्यांकन कीजिये।
- तद्नुसार उचित निष्कर्ष लिखिये।

भूमिका:

फ्राँसीसी क्रांति (1789-1799) विश्व इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना थी, जो महत्त्वपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उथल-पुथल से प्रभावित थी। यह उन कारकों की जटिल परस्पर क्रिया से प्रेरित था जिनका वैश्विक शासन और सामाजिक पुनर्गठन पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा।

मुख्य भाग:

- **सामाजिक कारक:**
  - **सामाजिक असमानता:** फ्राँसीसी समाज तीन संपदाओं में विभाजित था, पादरी और कुलीन वर्ग के लोग विशेषाधिकारों का आनंद ले रहे थे, जबकि आम लोगों को उत्पीड़न और गरीबी का सामना करना पड़ रहा था।
  - **बौद्धिक प्रबोधन:** स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की वकालत करने वाले प्रबुद्ध विचारों ने पारंपरिक मान्यताओं को चुनौती दी तथा राजशाही एवं चर्च के अधिकार पर प्रश्न उठाए।
  - **राजशाही के प्रति आक्रोश:** लुई सोलहवें के अधीन पूर्ण राजशाही को दमनकारी और आम लोगों की ज़रूरतों के संपर्क से बाहर माना जाता था।
  - **अमेरिकी क्रांति से प्रेरणा:** ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सफल अमेरिकी क्रांति (1775-1783) ने फ्राँसीसियों को राजशाही शासन से अपनी मुक्ति पाने के लिये प्रेरित किया।
- **राजनीतिक कारक:**
  - **वित्तीय कुप्रबंधन:** फ्राँसीसी राजशाही के वित्तीय कुप्रबंधन, जिसमें युद्धों और अदालतों पर होने वाला अत्यधिक खर्च शामिल था, के कारण आर्थिक संकट व्याप्त हो गया।
  - **एस्टेट-जनरल की विफलता:** 1789 में बुलाई गई एस्टेट-जनरल, तीसरे एस्टेट की शिकायतों को संबोधित करने में विफल रही, जिसके कारण नेशनल असेंबली का गठन हुआ।
  - **राष्ट्रीय सभा का गठन:** तीसरे एस्टेट का प्रतिनिधित्व करने वाली नेशनल असेंबली ने क्रांति की शुरुआत को चिह्नित करते हुए खुद को फ्राँस की वैध सरकार के रूप में घोषित किया।
- **आर्थिक कारक:**
  - **खराब फसल:** 1780 के दशक के अंत में खराब फसल के कारण भोजन की कमी हो गई और कीमतें बढ़ गईं, जिससे आम लोगों की दुर्दशा हुई।
  - **कराधान प्रणाली:** आम लोगों पर असंगत रूप से कर का बोझ पड़ा, जबकि पादरी और कुलीन वर्ग ने छूट का आनंद लिया, जिससे नाराजगी तथा असंतोष बढ़ गया।
  - **पूंजीपति आर्थिक आकांक्षाएँ:** पूंजीपति वर्ग, जिसमें धनी व्यापारी और पेशेवर शामिल थे, ने सामंती व्यवस्था को चुनौती देते हुए अधिक से अधिक राजनीतिक शक्ति व आर्थिक अवसरों की मांग की।

दीर्घकालिक महत्त्व:

- **शासन व्यवस्था का लोकतंत्रीकरण:** फ्राँसीसी क्रांति ने आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धांतों और संस्थानों के लिये आधार तैयार करते हुए, पूर्ण राजतंत्र से प्रतिनिधि लोकतंत्र में परिवर्तन को उत्प्रेरित किया।
- **राष्ट्रवाद और नागरिकता:** क्रांति ने राष्ट्रीय पहचान और नागरिक उत्तरदायित्व की भावना को बढ़ावा दिया, राजशाही या स्थानीय प्रभुओं के प्रति पारंपरिक निष्ठा के अलावा, विश्व में राष्ट्रवाद के उदय में योगदान दिया।
- **मानवाधिकार और सामाजिक न्याय:** क्रांति के दौरान प्रख्यापित मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा में मानव अधिकारों एवं सामाजिक समानता के सिद्धांतों को स्थापित किया गया, जिसने मुक्ति व नागरिक अधिकारों के लियेआगामी आंदोलनों को प्रभावित किया।
- **वैश्विक शासन पर प्रभाव:** फ्राँसीसी क्रांति ने लैटिन अमेरिका और कैरेबियन सहित दुनिया के अन्य हिस्सों में क्रांतिकारी आंदोलनों को प्रेरित किया, जिससे औपनिवेशिक शासन को उखाड़ फेंकने में सहायता मिली।
- **सामाजिक पुनर्गठन:** सामंती विशेषाधिकारों के उन्मूलन और भूमि के पुनर्वितरण ने सामाजिक परिदृश्य को मौलिक रूप से परिवर्तित कर दिया, यद्यपि असमान रूप से आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के साथ ही सामाजिक गतिशीलता का मार्ग प्रशस्त किया।

निष्कर्ष:

फ्राँसीसी क्रांति सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कारकों के संयोजन से प्रेरित एक विचित्र घटना थी। इसका दीर्घकालिक महत्त्व वैश्विक शासन, प्रेरक क्रांतिकारी आंदोलनों के साथ-साथ सामाजिक पुनर्गठन पर इसके प्रभाव में निहित है। यह क्रांति परिवर्तन लाने और इतिहास की दिशा को आकार देने में लोकप्रिय आंदोलनों की शक्ति की याद दिलाती है।

Q28. भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर असहयोग आंदोलन के प्रभाव की चर्चा करते हुए इसकी रणनीतियों एवं परिणामों का विश्लेषण कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- उत्तर की शुरुआत असहयोग आंदोलन से कीजिये।
- भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर असहयोग आंदोलन के प्रभाव पर चर्चा कीजिये।
- असहयोग आंदोलन की रणनीतियों और परिणामों का विश्लेषण कीजिये।
- तद्नुसार उचित निष्कर्ष लिखिये।

भूमिका:

असहयोग आंदोलन (1920-1922) ने महात्मा गांधी द्वारा शुरू किये गए स्वतंत्रता के लिये भारत के संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित किया। इसका उद्देश्य अहिंसक प्रतिरोध, बहिष्कार और सविनय अवज्ञा के माध्यम से ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीयों को एकजुट करना था।

मुख्य भाग:

असहयोग आंदोलन की रणनीतियाँ:

- **ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार:**
  - भारतीयों को ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार करने और इसके स्थान पर खादी (हाथ से बुने हुए वस्त्र) अपनाने के लिये प्रोत्साहित किया गया।
  - इससे भारत में ब्रिटिश कपड़ा निर्यात में उल्लेखनीय गिरावट आई, जिससे उनकी अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई। इसने आत्मनिर्भरता और स्वदेशी उद्योगों के विकास को बढ़ावा दिया।
- **ब्रिटिश संस्थानों से वापसी:**
  - लोगों से सरकारी नौकरियों, स्कूलों और कॉलेजों से इस्तीफा देने का आग्रह किया गया।
  - इससे ब्रिटिश प्रशासन और संस्थाएँ कमज़ोर हो गईं, जिससे उनका शासन बाधित हो गया।
  - इसने भारतीयों की स्वतंत्रता के लिये बलिदान देने की इच्छा को प्रदर्शित किया।
- **सविनय अवज्ञा:**
  - अहिंसक प्रतिरोध और अवज्ञा प्रमुख रणनीति थी।
  - उदाहरणों में चौरी-चौरा की घटना शामिल है, जहाँ प्रदर्शनकारी हिंसक हो गए, जिसके कारण गांधीजी को अहिंसा बनाए रखने के लिये कुछ समय के लिये आंदोलन स्थगित करना पड़ा।
- **हिंदू और मुसलमानों के बीच एकता:**
  - इस आंदोलन का उद्देश्य सांप्रदायिक विभाजन को समाप्त करना और हिंदू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा देना था।
  - इस एकता ने राष्ट्रीय आंदोलन को मज़बूत किया और भारतीयों में एकजुटता की भावना उत्पन्न की।

असहयोग आंदोलन का प्रभाव:

- **राजनीतिक जागृति:**
  - इस आंदोलन ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना और भागीदारी की लहर जागृत की।
  - किसानों और श्रमिकों सहित समाज के विभिन्न वर्गों के लोग सक्रिय रूप से आंदोलन में शामिल हुए।
- **ब्रिटिश प्रतिक्रिया:**
  - ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को रोकने के लिये दमनकारी उपाय लागू किये, जिससे बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ और दमन हुआ।
  - इसने भारतीय जनता की ताकत और दृढ़ संकल्प को उजागर किया।
- **अंतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया:**
  - इस आंदोलन ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान आकर्षित किया, विशेषकर ब्रिटेन में, जहाँ इसने स्वतंत्रता के लिये भारतीय आकांक्षाओं के बारे में जागरूकता बढ़ाई।
  - इससे ब्रिटिश सरकार पर भारत की मांगों पर विचार करने का दबाव बढ़ गया।
- **नये नेताओं का उदय:**
  - इस आंदोलन ने जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस जैसे नए नेताओं को प्रमुखता से उभरने के लिये एक मंच प्रदान किया।
  - इन नेताओं ने स्वतंत्रता आंदोलन के बाद के चरणों में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाईं।

असहयोग आंदोलन के परिणाम:

- **ब्रिटिश नीति में परिवर्तन:**
  - इस आंदोलन ने अंग्रेज़ों को भारत में उनकी नीतियों पर पुनर्विचार करने के लिये विवश किया।
  - वर्ष 1927 में संवैधानिक सुधारों की सिफारिश करने के लिये साइमन कमीशन की नियुक्ति की गई, हालाँकि भारतीयों ने इसका बहिष्कार किया।
- **भारतीय राजनीति में बदलाव:**
  - इस आंदोलन से भारतीय राजनीति में अधिक मुखर और समावेशी राष्ट्रवाद की ओर बदलाव आया।
  - इसने सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन जैसे भविष्य के जन आंदोलनों की नींव रखी।
- **विरासत:**
  - असहयोग आंदोलन ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अहिंसक प्रतिरोध की एक स्थायी विरासत प्रस्तुत की।
  - इसने संयुक्त राज्य अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग जूनियर सहित विश्व भर के भावी नेताओं और आंदोलनों को प्रेरित किया।

निष्कर्ष:

असहयोग आंदोलन भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, जिसने स्वतंत्रता आंदोलन की दिशा को आकार दिया तथा भारतीय समाज और राजनीति पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ा। इसने स्वतंत्रता के लिये भारतीयों के बीच अहिंसक प्रतिरोध की शक्ति और उद्देश्य की एकता को प्रदर्शित किया।

Q29. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में असहयोग आंदोलन के प्रभाव पर चर्चा कीजिये, इसकी रणनीतियों और परिणामों का विश्लेषण कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- असहयोग आंदोलन के बारे में बताते हुए उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर असहयोग आंदोलन के प्रभाव की चर्चा कीजिये।
- असहयोग आंदोलन की रणनीतियों एवं परिणामों का विश्लेषण कीजिये।
- उचित निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

असहयोग आंदोलन (1920-1922) ने महात्मा गांधी द्वारा भारत की स्वतंत्रता के लिये शुरू किये गए संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित किया। इसका उद्देश्य अहिंसक प्रतिरोध, बहिष्कार एवं सविनय अवज्ञा के माध्यम से ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीयों को एकजुट करना था।

मुख्य भाग:

असहयोग आंदोलन की रणनीतियाँ:

- **ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार:**
  - भारतीयों को ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार करने और इसके बजाय खादी (हाथ से बुने हुए कपड़े) अपनाने के लिये प्रोत्साहित किया गया।
  - इससे भारत में ब्रिटिश कपड़ा निर्यात में उल्लेखनीय कमी आई, जिससे उनकी अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई। इससे आत्मनिर्भरता के साथ स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन मिला।
- **ब्रिटिश संस्थानों से अलग होना:**
  - लोगों से सरकारी नौकरियों, स्कूलों एवं कॉलेजों से इस्तीफा देने का आग्रह किया गया।
  - इससे ब्रिटिश प्रशासन एवं संस्थाएँ कमज़ोर हो गईं, जिससे उनका शासन बाधित हुआ।
  - इसने स्वतंत्रता के लिये बलिदान देने की भारतीयों की इच्छा को प्रदर्शित किया।
- **सविनय अवज्ञा:**
  - इसमें अहिंसक विरोध एवं अवज्ञा प्रमुख रणनीति थी।
  - उदाहरणों में चौरी-चौरा की घटना शामिल है जहाँ प्रदर्शनकारी हिंसक हो गए और शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिये गांधीजी को कुछ समय के लिये आंदोलन बंद करना पड़ा।
- **हिंदू और मुसलमानों के बीच एकता:**
  - इस आंदोलन का उद्देश्य सांप्रदायिक विभाजन को कम करना तथा हिंदू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा देना था।
  - इस एकता से राष्ट्रीय आंदोलन को मज़बूती मिली और भारतीयों में एकजुटता की भावना विकसित हुई।

असहयोग आंदोलन का प्रभाव:

- **राजनीतिक चेतना में वृद्धि:**
  - इस आंदोलन ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना के साथ भागीदारी की भावना विकसित की।
  - किसानों एवं श्रमिकों सहित समाज के विभिन्न वर्गों के लोग सक्रिय रूप से इस आंदोलन में शामिल हुए।
- **ब्रिटिश प्रतिक्रिया:**
  - ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को रोकने के लिये दमनकारी उपाय लागू किये, जिससे बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ और दमनकारी नीति को अपनाया गया।
  - इसने भारतीय लोगों की शक्ति तथा दृढ़ संकल्प को उजागर किया।
- **अंतर्राष्ट्रीय ध्यान:**
  - इस आंदोलन ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर (खासकर ब्रिटेन में) पर ध्यान आकर्षित किया और स्वतंत्रता हेतु भारतीय आकांक्षाओं के बारे में जागरूकता में वृद्धि की।
  - इस कारण ब्रिटिश सरकार पर भारतीय मांगों पर ध्यान देने का दबाव बढ़ गया।
- **नए नेताओं का उदय:**
  - इस आंदोलन ने जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस जैसे नए नेताओं को प्रमुखता से उभरने के लिये एक मंच प्रदान किया।
  - इन नेताओं ने स्वतंत्रता आंदोलन के बाद के चरणों में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाईं।

असहयोग आंदोलन के परिणाम:

- **ब्रिटिश नीति में परिवर्तन:**
  - इस आंदोलन ने अंग्रेज़ों को भारत में अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करने के लिये मजबूर किया।
  - वर्ष 1927 में संवैधानिक सुधारों की सिफारिश करने के लिये साइमन कमीशन की नियुक्ति की गई, हालाँकि भारतीयों ने इसका बहिष्कार किया।
- **भारतीय राजनीति में बदलाव:**
  - इस आंदोलन से भारतीय राजनीति में अधिक मुखर और समावेशी राष्ट्रवाद की ओर बदलाव देखा गया।

- इसने सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन जैसे भविष्य के जन आंदोलनों की नींव रखी।

- **परंपरा:**
  - असहयोग आंदोलन को भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अहिंसक प्रतिरोध की एक स्थायी विरासत मन जाता है।
  - इसने संयुक्त राज्य अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग जूनियर सहित विश्व भर के भावी नेताओं और आंदोलनों को प्रेरित किया।

निष्कर्ष:

असहयोग आंदोलन भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्त्वपूर्ण क्षण था, जिसने स्वतंत्रता आंदोलन की दिशा को आकार दिया तथा भारतीय समाज एवं राजनीति पर स्थायी प्रभाव छोड़ा। इसने स्वतंत्रता प्राप्ति के क्रम में भारतीयों के बीच अहिंसक प्रतिरोध की शक्ति तथा उद्देश्य की एकता को प्रदर्शित किया।

Q30. फ्राँसीसी क्रांति का वैश्विक शासन और सामाजिक पुनर्गठन पर दीर्घकालिक महत्त्व का मूल्यांकन कीजिये, फ्राँसीसी क्रांति के अग्रणी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारकों की जाँच कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- फ्राँसीसी क्रांति का परिचय देते हुए उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- फ्राँसीसी क्रांति के लिये अग्रणी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कारकों का वर्णन कीजिये।
- वैश्विक शासन एवं सामाजिक पुनर्गठन के लिये इसके दीर्घकालिक महत्त्व का मूल्यांकन कीजिये।
- उचित निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

फ्राँसीसी क्रांति (1789-1799) विश्व इतिहास में एक ऐतिहासिक क्षण था, जो सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक उथल-पुथल का चरण था। यह उन कारकों की जटिल परस्पर क्रिया से प्रेरित था जिनका वैश्विक शासन तथा सामाजिक पुनर्गठन पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा था।

मुख्य भाग:

सामाजिक कारक:

- **सामाजिक असमानता:** फ्राँसीसी समाज तीन संप्रदायों में विभाजित था, जिसमें पादरी और कुलीन लोगों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, जबकि आम लोगों को उत्पीड़न तथा गरीबी का सामना करना पड़ रहा था।
- **बौद्धिक ज्ञानोदय:** स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारे की वकालत करने वाले प्रबुद्ध विचारों ने पारंपरिक मान्यताओं को चुनौती दी तथा राजशाही और चर्च के अधिकार पर सवाल उठाया।
- **राजशाही के प्रति नाराज़गी:** लुई XVI के तहत पूर्ण राजशाही को दमनकारी एवं आम लोगों की ज़रूरतों के खिलाफ माना जाता था।
- **अमेरिकी क्रांति से प्रेरणा:** ब्रिटिश शासन के खिलाफ सफल अमेरिकी क्रांति (1775-1783) ने फ्राँसीसियों को राजशाही शासन से मुक्ति पाने के लिये प्रेरित किया।

राजनीतिक कारक:

- **वित्तीय कुप्रबंधन:** फ्राँसीसी राजशाही के वित्तीय कुप्रबंधन (जिसमें युद्धों पर अत्यधिक खर्च शामिल था) के कारण आर्थिक संकट पैदा हो गया।
- **एस्टेट-जनरल की विफलता:** वर्ष 1789 में बुलाई गई एस्टेट-जनरल, तीसरे एस्टेट की शिकायतों को हल करने में विफल रही, जिसके कारण नेशनल असेंबली का गठन हुआ।
- **नेशनल असेंबली का गठन:** तीसरे एस्टेट का प्रतिनिधित्व करने वाली नेशनल असेंबली ने क्रांति की शुरुआत करते हुए खुद को फ्राँस की वैध सरकार घोषित किया।

आर्थिक कारक:

- **फसल का खराब होना:** 1780 के दशक के अंत में फसल के खराब होने के कारण भोजन की कमी हो गई तथा कीमतें बढ़ गईं, जिससे आम लोगों की स्थिति काफी नाज़ुक हो गई।
- **कराधान प्रणाली:** इससे आम लोगों पर कर का बोझ बढ़ गया, जबकि पादरी एवं कुलीन वर्ग को इससे छूट प्राप्त थी, जिससे लोगों में नाराज़गी और असंतोष को बढ़ावा मिला।
- **पूंजीपति वर्ग की आर्थिक आकांक्षाएँ:** पूंजीपति वर्ग (जिसमें धनी व्यापारी और पेशेवर शामिल थे) ने सामंती व्यवस्था को चुनौती देते हुए अधिक राजनीतिक शक्ति एवं आर्थिक अवसरों को पाने का प्रयास किया।

दीर्घकालिक महत्त्व :

- **शासन का लोकतंत्रीकरण:** फ्राँसीसी क्रांति ने आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धांतों एवं संस्थानों के लिये आधार तैयार करते हुए, पूर्ण राजतंत्र से प्रतिनिधिक लोकतंत्र में परिवर्तन को उत्प्रेरित किया।
- **राष्ट्रवाद और नागरिकता:** इस क्रांति ने राष्ट्रीय पहचान एवं नागरिकता की भावना को बढ़ावा दिया, जिससे राजशाही या स्थानीय प्रमुखों के प्रति पारंपरिक निष्ठा के इतर, विश्व भर में राष्ट्रवाद के उदय में योगदान मिला।
- **मानव अधिकार और सामाजिक न्याय:** इस क्रांति के दौरान मानव और नागरिक अधिकारों की घोषणा से मानव अधिकारों एवं

सामाजिक समानता के सिद्धांत को बल मिला जिसका प्रभाव स्वतंत्रता और नागरिक अधिकारों के लिये होने वाले बाद के आंदोलनों पर पड़ा।

- **वैश्विक शासन पर प्रभाव:** फ्राँसीसी क्रांति ने लैटिन अमेरिका एवं कैरेबियन सहित विश्व के अन्य हिस्सों में क्रांतिकारी आंदोलनों को प्रेरित किया, जिससे औपनिवेशिक शासन को उखाड़ फेंकने की प्रेरणा मिली।
- **सामाजिक पुनर्गठन:** सामंती विशेषाधिकारों के उन्मूलन एवं भूमि के पुनर्वितरण ने सामाजिक परिदृश्य को मौलिक रूप से बदल दिया, इससे आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं एवं सामाजिक गतिशीलता का मार्ग प्रशस्त हुआ।

निष्कर्ष:

फ्राँसीसी क्रांति सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कारकों के संयोजन से प्रेरित एक जटिल घटना थी। इसका दीर्घकालिक महत्त्व वैश्विक शासन, प्रेरक क्रांतिकारी आंदोलनों एवं सामाजिक पुनर्गठन पर इसके प्रभाव में निहित है। यह क्रांति परिवर्तन लाने तथा इतिहास की दिशा को आकार देने के क्रम में लोकप्रिय आंदोलनों की शक्ति की याद दिलाती है।

Q31. स्वतंत्र भारत में रियासतों के एकीकरण से संबंधित चुनौतियों एवं रणनीतियों पर चर्चा कीजिये। इससे स्वतंत्रता के पश्चात भारत की क्षेत्रीय अखंडता को किस प्रकार आकार मिला? (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- रियासतों के एकीकरण के बारे में बताते हुए उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- स्वतंत्र भारत में रियासतों के एकीकरण में शामिल चुनौतियों तथा रणनीतियों पर चर्चा कीजिये।
- स्वतंत्रता के बाद भारत की क्षेत्रीय अखंडता को आकार देने में इसके प्रभाव पर प्रकाश डालिये।
- उचित निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

स्वतंत्र भारत में रियासतों का एकीकरण एक जटिल प्रक्रिया थी जिसमें कई चुनौतियों के साथ नवगठित राष्ट्र की क्षेत्रीय अखंडता सुनिश्चित करने के लिये तार्किक रणनीतियों को अपनाने की आवश्यकता थी। वर्ष 1947 में ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारत को एक एकीकृत राष्ट्र-राज्य के रूप में मज़बूती प्रदान करने के लिये यह एकीकरण महत्त्वपूर्ण था।

मुख्य भाग:

संबंधित चुनौतियाँ:

- **विविध राजनीतिक परिदृश्य:** भारत में 500 से अधिक रियासतें थीं, जिनमें से प्रत्येक का अपना शासक और प्रशासनिक ढाँचा था, जिससे खंडित राजनीतिक परिदृश्य बना हुआ था।
- **सहयोगात्मक प्रणाली में अंतर:** कुछ रियासतें स्वेच्छा से भारत में शामिल हो गईं लेकिन जूनागढ़, कश्मीर आदि जैसी रियासतें धार्मिक पहचान, ऐतिहासिक शिकायतों या स्वतंत्रता की आकांक्षाओं जैसे कारकों के कारण भारत में शामिल होने के प्रति अनिच्छुक होने के साथ उनका स्पष्ट रूप से विरोध कर रही थीं।
- **सामरिक भू-राजनीतिक चिंताएँ:** कुछ रियासतें (विशेष रूप से पाकिस्तान या चीन जैसे अन्य देशों की सीमा से लगी रियासतें) रणनीतिक महत्त्व रखती थीं, जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा एवं क्षेत्रीय अखंडता के बारे में चिंताएँ बढ़ गईं।
- **कानूनी अस्पष्टता:** एकीकरण प्रक्रिया के लिये स्पष्ट कानूनी ढाँचे की कमी के कारण भारत सरकार एवं रियासतों के शासकों के बीच बातचीत जटिल हो गई।
- **बाहरी हस्तक्षेप:** कुछ रियासतों (जैसे हैदराबाद) को बाहरी शक्तियों से प्रोत्साहन या समर्थन मिला, जिससे एकीकरण प्रक्रिया और जटिल होने के साथ भारत की संप्रभुता के लिये चुनौतियाँ उत्पन्न हुईं।

नियोजित रणनीतियाँ:

- **कूटनीतिक विमर्श:** भारतीय राजनेता (विशेष रूप से सरदार वल्लभभाई पटेल) रियासतों के शासकों को स्वेच्छा से भारत में शामिल होने के लिये उनके साथ कूटनीतिक बातचीत में लगे रहे।
- **विलय-पत्र:** विलय-पत्र द्वारा रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने के लिये एक कानूनी तंत्र प्रदान किया गया, जिससे उन्हें आंतरिक मामलों में स्वायत्तता प्रदान की गई, जबकि रक्षा, विदेशी मामलों और संचार पर नियंत्रण भारत के डोमिनियन के पास रखा गया।
- **सैन्य हस्तक्षेप:** ऐसे मामलों में जहाँ राजनयिक प्रयास विफल हो गए या जब रियासतों को आंतरिक अशांति का सामना करना पड़ा तो भारत सरकार ने विलय हेतु सैन्य हस्तक्षेप का सहारा लिया, जैसा कि हैदराबाद और जूनागढ़ के मामलों में देखा गया था।
- **एकीकरण समितियाँ:** भारतीय संघ में रियासतों के प्रशासनिक एकीकरण की निगरानी करने, सुचारु परिवर्तन एवं संवैधानिक सिद्धांतों का पालन सुनिश्चित करने के लिये एकीकरण समितियाँ बनाई गईं।
- **राजनीतिक प्रोत्साहन:** भारत सरकार ने रियासतों को भारत में शामिल होने के लिये सहमत करने हेतु वित्तीय सहायता, भारतीय संसद में प्रतिनिधित्व तथा सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्वायत्तता की गारंटी जैसे राजनीतिक प्रोत्साहन की पेशकश की।

क्षेत्रीय अखंडता पर प्रभाव:

- **एकीकृत राष्ट्र का निर्माण:** स्वतंत्र भारत में रियासतों के सफल एकीकरण से परिभाषित क्षेत्रीय सीमाओं के साथ एकीकृत राष्ट्र-राज्य का निर्माण होने से भारत की क्षेत्रीय अखंडता मज़बूत हुई।
- **सामरिक सीमाओं का संरक्षण:** जम्मू-कश्मीर जैसी रणनीतिक रियासतों को एकीकृत करके, भारत सीमाओं तथा अपने क्षेत्रीय हितों की रक्षा करने में सक्षम हुआ (खासकर बाहरी खतरों से ग्रस्त क्षेत्रों में)।
- **विविधता में एकता को बढ़ावा:** भारत का उद्देश्य एकीकरण प्रक्रिया के तहत विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं एवं परंपराओं वाली विविध रियासतों को भारतीय संघ में शामिल करना था ताकि विविधता में एकता की भावना को बढ़ावा मिल सके।
- **संप्रभुता का सुदृढ़ीकरण:** भारत की रियासतों के सफल एकीकरण से संप्रभुता का दावा करने और अपने क्षेत्र पर नियंत्रण बनाए रखने की भारत की क्षमता का प्रदर्शन हुआ, जिससे अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में एक संप्रभु राष्ट्र के रूप में इसका प्रभाव बढ़ गया।
- **संघवाद की विरासत:** एकीकरण प्रक्रिया से भारत की संघीय संरचना को आधार मिला, जिसमें रियासतों को एकीकृत राष्ट्र के ढाँचे के भीतर कुछ हद तक स्वायत्तता दी गई, जिससे देश के लोकतांत्रिक लोकाचार को मज़बूती मिली।

निष्कर्ष:

स्वतंत्र भारत में रियासतों का एकीकरण एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था जिससे कई चुनौतियाँ उत्पन्न हुईं लेकिन अंततः इससे भारत की क्षेत्रीय अखंडता को मज़बूती मिली। कूटनीतिक बातचीत, विधिक ढाँचे एवं रणनीतिक हस्तक्षेप के माध्यम से भारत ने एकीकृत राष्ट्र-राज्य निर्माण के क्रम में विविध रियासतों का सफलतापूर्वक एकीकरण किया, जिससे इसे वैश्विक मंच पर एक संप्रभु, लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में उभरने के लिये आधार मिला।

Q32. सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण तथा राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में भारतीय शास्त्रीय संगीत की भूमिका पर चर्चा कीजिये। समाज पर इसके प्रभाव को उदाहरण सहित बताइये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- भारतीय शास्त्रीय संगीत का परिचय देते हुए उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- सांस्कृतिक विरासत तथा राष्ट्रीय एकता के संरक्षण में भारतीय शास्त्रीय संगीत की भूमिका पर चर्चा कीजिये।
- समाज पर इसके प्रभाव को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।
- उचित निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

शास्त्रीय भारतीय संगीत, संगीत का एक जटिल और प्राचीन रूप है जिसकी जड़ें हिंदू धर्म के सबसे पुराने ग्रंथ वेदों में निहित हैं, जो लगभग 1500 ईसा पूर्व के हैं। इसे दो मुख्य परंपराओं में विभाजित किया गया है: हिंदुस्तानी संगीत, (जो उत्तर भारत में प्रचलित है) और कर्नाटक संगीत (जो दक्षिण भारत में लोकप्रिय) है।

मुख्य भाग:

सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण:

- **ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति सामवेद जैसे प्राचीन ग्रंथों से हुई है, जो इसकी गहन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं भारतीय परंपराओं से संबंध को प्रदर्शित करता है।**
- **ज्ञान का हस्तांतरण:** शास्त्रीय संगीत में गुरु-शिष्य परंपरा (शिक्षक-शिष्य परंपरा) की प्रमाणिकता को संरक्षित करते हुए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान एवं कौशल का हस्तांतरण सुनिश्चित हुआ है।
- **परंपरा को बनाए रखना:** शास्त्रीय संगीत में मज़बूत नियमों तथा परंपराओं (जैसे कि राग प्रणाली, जो पीढ़ियों से चली आ रही है) का पालन किया गया है, जिससे भारत की संगीत विरासत का संरक्षण सुनिश्चित हुआ है।
  - उदाहरण के लिये, मध्यकालीन भारत के भक्ति और सूफी संतों ने सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देते हुए, भक्ति गीतों (भजन) एवं कव्वालियों के माध्यम से ईश्वर के प्रति अपनी भक्ति को व्यक्त किया।
  - इसी तरह आधुनिक समय के संगीतकार जैसे- ए.आर. रहमान और ज़ाकिर हुसैन द्वारा समकालीन शैलियों के साथ शास्त्रीय तत्त्वों का समावेश करने के क्रम में व्यापक दर्शकों तक पहुँच के माध्यम से पीढ़ीगत अंतराल को कम करने में भूमिका निभाई गई है।

राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना:

- **सांस्कृतिक एकता:** शास्त्रीय संगीत एक सामान्य सांस्कृतिक सूत्र के रूप में कार्य करते हुए विविध पृष्ठभूमि के लोगों को एकजुट करने में भूमिका निभाता है। इसकी क्षेत्रीय, भाषाई एवं धार्मिक बाधाओं को कम करने के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा देने में भूमिका है।
  - **राष्ट्रगान:** रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा रचित भारतीय राष्ट्रगान, "जन गण मन", शास्त्रीय रागों पर आधारित है, जो राष्ट्रीय प्रतीकों के संदर्भ में शास्त्रीय संगीत के प्रभाव को दर्शाता है।
- **समावेशी प्रकृति:** शास्त्रीय संगीत में विभिन्न क्षेत्रीय शैलियों एवं वाद्ययंत्रों का समायोजन शामिल है, जो भारत की सांस्कृतिक विविधता का परिचायक है। इस समावेशिता से विभिन्न समुदायों के बीच सद्भाव तथा समन्वय को बढ़ावा मिलता है।
  - शास्त्रीय संगीत समारोह और सवाई गंधर्व भीमसेन महोत्सव एवं चेन्नई संगीत सीज़न जैसे उत्सव विविध पृष्ठभूमि के कलाकारों

तथा दर्शकों को एक साथ लाते हैं, जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं समझ को बढ़ावा मिलता है।

- **विविधता में एकता:** शास्त्रीय संगीत द्वारा भारत में सांस्कृतिक विविधता में एकता को महत्त्व मिलता है। हिंदुस्तानी और कर्नाटक जैसी विभिन्न शैलियाँ, भारतीय संगीत की समृद्ध परंपरा को प्रदर्शित करती हैं।

समाज पर प्रभाव:

- **आध्यात्मिक और भावनात्मक उन्नयन:** शास्त्रीय संगीत को भावनात्मक और आध्यात्मिक उन्नयन के लिये जाना जाता है। इससे लोगों का जीवन समृद्ध होने के साथ शांति एवं समन्वय की भावना को बढ़ावा मिलता है।
- **सामाजिक एकजुटता:** शास्त्रीय संगीत द्वारा अक्सर सामाजिक और धार्मिक समारोहों के एक अभिन्न अंग के रूप में समुदायों को एक साथ लाकर सामाजिक बंधनों को मज़बूत करने में भूमिका निभाई जाती है।
  - **सांस्कृतिक त्योहार:** शास्त्रीय संगीत सांस्कृतिक त्योहारों जैसे कि नवरात्रि, दिवाली एवं दुर्गा पूजा का एक अनिवार्य हिस्सा है, जो भारतीय सांस्कृतिक समारोहों में इसकी अभिन्न भूमिका को प्रदर्शित करता है।
- **शैक्षिक मूल्य:** अपने कलात्मक मूल्य के अलावा, शास्त्रीय संगीत के शैक्षिक लाभ भी हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि संगीत सीखने से संज्ञानात्मक कौशल, स्मृति एवं एकाग्रता को बढ़ावा मिलता है।

निष्कर्ष:

भारतीय शास्त्रीय संगीत द्वारा भारत की सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक के रूप में राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के साथ समाज में समन्वय बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है। यह सांस्कृतिक अभिव्यक्ति तथा सामाजिक एकजुटता का एक शक्तिशाली माध्यम है।

Q33. भारत में जैन एवं बौद्ध धर्म के उदय की विवेचना कीजिये। बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म की शिक्षाएँ किस प्रकार अपने दृष्टिकोणों में समान होने के साथ-साथ एक-दूसरे से भिन्न भी हैं? (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- उत्तर की शुरुआत बौद्ध धर्म और जैन धर्म के उदय और प्रसार के परिचय के साथ कीजिये।
- बौद्ध धर्म और जैन धर्म की शिक्षाओं और दर्शन में अंतर बताइये।
- अभिसारी और अपसारी शिक्षाओं के उदाहरणों का उपयोग करते हुए परिभाषित कीजिये।
- तद्नुसार निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास प्राचीन भारत ने बौद्धिक और आध्यात्मिक परिवर्तन की अवधि देखी। वैदिक प्रणाली की सीमाओं के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में दो प्रभावशाली धर्मों-जैन धर्म और बौद्ध धर्म के उद्भव ने लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान के लिये वैकल्पिक मार्ग प्रदान किये।

मुख्य भाग:

भारत में जैन एवं बौद्ध धर्म का उदय:

- **भारत में बौद्ध धर्म का उदय:**
  - 2,600 वर्ष पूर्व भारत में बौद्ध धर्म का उद्भव एक ऐसी जीवन शैली के रूप में हुआ था, जिसमें किसी व्यक्ति में परिवर्तन लाने की क्षमता थी।
  - यह धर्म 563 ईसा पूर्व में उत्पन्न हुए इसके संस्थापक सिद्धार्थ गौतम (गौतम बुद्ध) की शिक्षाओं और जीवन के अनुभवों पर आधारित है।
    - उनका जन्म शाक्य वंश के शाही परिवार में हुआ था, जो भारत-नेपाल सीमा के पास स्थित लुंबिनी में कपिलवस्तु पर शासन करते थे।
  - 29 वर्ष की आयु में गौतम ने अपने वैभवशाली जीवन को त्याग दिया और तपस्या, या अत्यधिक आत्म-अनुशासन की जीवन शैली अपना ली।
    - निरंतर 49 दिनों के ध्यान के बाद, गौतम को बिहार के एक गाँव बोधगया में एक पीपल के वृक्ष के नीचे बोधि (ज्ञान) की प्राप्ति हुई।
- **भारत में जैन धर्म का उदय:**
  - छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जैन धर्म को प्रसिद्धि मिली। जब भगवान महावीर ने धर्म का प्रचार किया।
  - जैन धर्म में 24 महान उपदेशक हुए, जिनमें से भगवान महावीर अंतिम थे।
    - इन चौबीस उपदेशकों को तीर्थंकर कहा जाता था - जिन्होंने जीवित रहते हुए ज्ञान (मोक्ष) प्राप्त किया था और लोगों को इसका उपदेश दिया था।
  - 24वें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर का जन्म 540 ईसा पूर्व में वैशाली के निकट कुंडग्राम नामक गाँव में हुआ था।
  - उन्होंने 12 वर्षों तक तपस्या की और 42 वर्ष की आयु में कैवल्य नामक सर्वोच्च आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया (अर्थात दुख और सुख पर विजय प्राप्त की)।
  - उन्होंने अपने शिष्टमंडल के साथ कोशल, मगध, मिथिला, चंपा आदि की यात्रा की।
- **भारत में जैन और बौद्ध धर्म के उदय से जुड़े कारण**
  - बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उदय वैदिक धर्म की जाति व्यवस्था और अनुष्ठानों से असंतोष के कारण हुआ। उन्होंने समतावादी

दृष्टिकोण, अहिंसा और मुक्ति के मार्ग की पेशकश करते हुए, पीड़ित लोगों और व्यापारी वर्ग दोनों से अपील की। उनकी सरल शिक्षाओं और शाही समर्थन ने उनके प्रसार को और अधिक बढ़ावा दिया।

- अशोक, कनिष्क और हर्षवर्द्धन जैसे महान सम्राटों ने बौद्ध धर्म को संरक्षण दिया, जबकि जैन धर्म को उत्तर भारत के चंद्रगुप्त मौर्य, धनानंद और कलिंग नरेश खारवेल जैसे शासकों से संरक्षण प्राप्त हुआ।

बौद्ध धर्म और जैन धर्म की शिक्षाओं में अंतर:

- **बौद्ध धर्म और जैन धर्म की शिक्षाओं के बीच समानताएँ:**
  - **अहिंसा पर ध्यान देना:** दोनों धर्मों का केंद्र जीवित प्राणियों को नुकसान से बचाने के सिद्धांत पर आधारित है।
  - **मुक्ति की इच्छा:** पुनर्जन्म (संसार) के चक्र से बचना और ज्ञान प्राप्त करना दोनों परंपराओं में एक प्रमुख लक्ष्य है।
  - **नैतिक आचरण:** दोनों नैतिकता, सही जीवन और नेक मार्ग पर चलने पर ज़ोर देते हैं।
- **बौद्ध धर्म और जैन धर्म की शिक्षाओं के बीच अंतर:**
  - **अहिंसा का कठोर रूप से पालन:** जैन धर्म अहिंसा को अधिक कठोर रूपी चरम पर ले जाता है। जैन जीवन के सभी पहलुओं में अहिंसा का पालन करते हैं, जिसमें झाड़ू लगाते समय मास्क पहनकर सूक्ष्म जीवों से भी बचना शामिल है। सामान्यत: बौद्ध बड़े प्राणियों के प्रति अहिंसा पर ध्यान केंद्रित करते हैं।
  - **देवताओं की भूमिका:** बौद्ध धर्म देवताओं की पूजा पर ज़ोर नहीं देता है, आत्मज्ञान के लिये व्यक्तिगत प्रयास पर ध्यान केंद्रित करता है। जैन धर्म में कई देवता हैं, लेकिन उन्हें निर्माता या उद्धारकर्त्ता के रूप में नहीं देखा जाता है, बल्कि ऐसे प्राणियों के रूप में देखा जाता है जिन्होंने स्वयं मुक्ति प्राप्त की है।
  - **सामाजिक पदानुक्रम:** जैन धर्म में अभी भी विभिन्न संप्रदायों के साथ एक मठवासी पदानुक्रम है। बौद्ध धर्म अधिक समतावादी मठवासी संरचना पर ज़ोर देता है।

निष्कर्ष:

जैन धर्म और बौद्ध धर्म, समान परिस्थितियों से उत्पन्न हुए थे, प्राचीन भारत में ज्ञानोदय के लिये अलग-अलग मार्ग पेश करते थे। दोनों ने अहिंसा, अच्छे आचरण और पुनर्जन्म से बचने पर ज़ोर दिया। जिसमें जैन धर्म अहिंसा को चरम पर ले गया, जबकि बौद्ध धर्म ने आत्मनिर्भरता पर ध्यान केंद्रित किया। इन मतभेदों के बावजूद दोनों धर्म भारतीय आध्यात्मिकता के अभिन्न अंग बने हुए हैं, जो आने वाली सदियों तक इसकी नैतिकता, सामाजिक विचार और कलात्मक परंपराओं को प्रभावित करते हैं।

Q34. भारतीय लोक चित्रकला के विविध रूपों की चर्चा कीजिये। ये देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को किस प्रकार प्रदर्शित करते हैं? (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:

- भारतीय लोक चित्रकला का परिचय देते हुए उत्तर की शुरुआत कीजिये।
- भारतीय लोक चित्रकला के विविध रूपों का वर्णन कीजिये।
- वे देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत तथा सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को किस प्रकार दर्शाते हैं, विश्लेषण कीजिये।
- तद्नुसार निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

भारतीय लोक चित्रकला, कला का एक जीवंत और विविध रूप है, जो देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत तथा सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को दर्शाती है। इसकी अनूठी शैलियों, तकनीकों और विषयों से भारत के विभिन्न क्षेत्रों एवं समुदायों की कलात्मक परंपराओं का प्रदर्शन होता है।

मुख्य भाग:

भारतीय लोक चित्रकला के विविध रूप:

- **वर्ली पेंटिंग:**
  - वर्ली पेंटिंग भारतीय लोक कला के सबसे प्रसिद्ध रूपों में से एक है, जिसकी उत्पत्ति महाराष्ट्र की वर्ली जनजाति से हुई है।
  - इसमें शिकार, कृषि और मत्स्याग्रहण जैसे रोजमर्रा के जीवन से संबंधित दृश्यों को चित्रित करने के लिये ज्यामितीय आकृतियों एवं सरल रेखाओं का उपयोग होता है।
- **मधुबनी पेंटिंग:**
  - मधुबनी पेंटिंग, जिसे मिथिला कला भी कहा जाता है, की उत्पत्ति बिहार के मिथिला क्षेत्र से हुई है।
  - इन पेंटिंग में पौराणिक कहानियों और दैनिक जीवन के दृश्यों को बनाया जाता है तथा बोल्ड लाइनों एवं चमकीले रंगों का उपयोग करना इनकी विशेषता है।
- **पट्टचित्र पेंटिंग:**
  - पट्टचित्र पेंटिंग ओडिशा राज्य की एक पारंपरिक कला है। इसे प्राकृतिक रंगों का उपयोग करके बनाया जाता है और जटिल विवरण एवं ज्वलंत रंगों के लिये जाना जाता है।
  - पट्टचित्र पेंटिंग में अक्सर हिंदू पौराणिक कथाओं एवं कहानियों को चित्रित किया जाता है तथा इसका धार्मिक समारोहों में उपयोग होता है।

- **गोंड पेंटिंग:**
  - इसका विकास मध्यप्रदेश में हुआ है। इसमें डॉट्स और रेखाएँ, जीवंत रंग तथा लोक कथाओं के साथ वनस्पतियों, जीवों, देवताओं, मिथकों एवं किंवदंतियों को दर्शाया जाता है।
- **भील पेंटिंग:**
  - भील पेंटिंग राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश की भील जनजाति में प्रचलित एक स्वदेशी कला है।
  - इसे बिंदुओं एवं रेखाओं का उपयोग करके जटिल पैटर्न और रूपांकनों को बनाने हेतु जाना जाता है।
  - इसमें प्राय: जानवरों, प्रकृति तथा आदिवासी जीवन को दर्शाया जाता है, जो भील समुदाय की सांस्कृतिक परंपराओं एवं मान्यताओं को दर्शाते है।
- **संथाल चित्रकला:**
  - संथाल पेंटिंग झारखंड, पश्चिम बंगाल एवं ओडिशा की संथाल जनजाति के बीच प्रचलित एक पारंपरिक कला है।
  - संथाल पेंटिंग में प्राय: दैनिक जीवन, प्रकृति एवं आदिवासी रीति-रिवाज़ों के दृश्यों को बनाया जाता है, जो संथाल समुदाय की सांस्कृतिक विरासत तथा सामाजिक जीवन को दर्शाती है।

सांस्कृतिक विरासत का प्रतिबिंब:

- **पारंपरिक विषय-वस्तु और रूपांकन:**
  - लोक चित्र अक्सर पारंपरिक विषयों और रूपांकनों को दर्शाते हैं जो पीढ़ियों से चले आ रहे हैं, जो विशिष्ट क्षेत्रों या समुदायों की सांस्कृतिक विरासत को दर्शाते हैं।
  - इन विषयों में मिथकों, किंवदंतियों, अनुष्ठानों, त्योहारों और ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण शामिल हो सकता है जो लोगों की सांस्कृतिक पहचान के लिये महत्त्वपूर्ण हैं।
- **क्षेत्रीय विविधता:**
  - भारत के विभिन्न क्षेत्रों में लोक चित्रकला की अपनी विशिष्ट शैलियाँ हैं, जो स्थानीय रीति-रिवाज़ों, परंपराओं और परिदृश्यों से प्रभावित हैं।
  - यह क्षेत्रीय विविधता देश की विविध सांस्कृतिक विरासत को दर्शाती है, जो संपूर्ण भारत में विभिन्न उदाहरण के लिये कलाकार बाँस के ब्रश या ताड़ के पत्तों जैसे पारंपरिक उपकरणों के साथ-साथ खनिजों, पौधों या मृदा से प्राप्त प्राकृतिक रंगद्रव्य का उपयोग कर सकते हैं।
  - ये सामग्रियाँ और तकनीकें लोक चित्रों की प्रामाणिकता में योगदान करती हैं तथा उनके निर्माण से जुड़ी सांस्कृतिक प्रथाओं को उजागर करती हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता प्रतिबिंब:

- **दैनिक जीवन का चित्रण:**
  - लोक चित्रकलाएँ अक्सर दैनिक जीवन के दृश्यों को चित्रित करती हैं, जिसमें कृषि, मत्स्याग्रहण, शिकार और घरेलू कामकाज जैसी गतिविधियों को दर्शाया जाता है।
  - ये चित्रण संपूर्ण भारत में सामाजिक मानदंडों एवं मूल्यों की विविधता को प्रदर्शित करते हुए, विभिन्न समुदायों की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाओं, व्यवसायों और जीवन शैली में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।
- **सामुदायिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व:**
  - लोक चित्रकला अक्सर उन समुदायों के मूल्यों, विश्वासों और सामाजिक संरचनाओं को प्रतिबिंबित करती हैं जो उन्हें बनाते हैं।
  - उदाहरण के लिये चित्रकला में परिवार, सामुदायिक एकजुटता, बड़ों के प्रति सम्मान एवं प्रकृति के प्रति आस्था जैसे विषयों को दर्शाया जा सकता है, जो विशिष्ट समूहों के भीतर प्रचलित सांस्कृतिक मानदंडों और सामाजिक गतिशीलता की झलक प्रस्तुत करते हैं।
- **विविधता का उत्सव:**
  - लोक चित्रकला विषयों, शैलियों और कलात्मक परंपराओं की एक विस्तृत श्रृंखला का प्रदर्शन करके भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य की विविधता को प्रदर्शित करती हैं।
  - मधुबनी पेंटिंग के जटिल पैटर्न से लेकर गोंड पेंटिंग की बोल्ड लाइनों तक, लोक चित्रकला का प्रत्येक रूप भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता में योगदान देता है, जो इसकी विरासत की समृद्धि और जटिलता को उजागर करता है।
- **सांस्कृतिक पहचान का संरक्षण:**
  - लोक चित्रकला सांस्कृतिक पहचान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संरक्षित और प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
  - पारंपरिक विषयों, रूपांकनों और तकनीकों को चित्रित करके, ये पेंटिंग सांस्कृतिक प्रथाओं एवं मान्यताओं के दृश्य अभिलेख के रूप में काम करती हैं, जिससे समुदायों को निरंतरता को बनाए रखने में मदद मिलती है।

निष्कर्ष:

भारतीय लोक चित्रकलाएँ देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता का प्रतिबिंब हैं। वे भारतीय कला की जीवंत और गतिशील प्रकृति को उजागर करते हुए विभिन्न समुदायों की कलात्मक परंपराओं, मान्यताओं एवं जीवन शैली का प्रदर्शन करते हैं। लोक चित्रकला न केवल कलात्मक अभिव्यक्ति का एक रूप है, बल्कि भारत की विविध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और बढ़ावा देने का एक साधन भी है।

Q35. भारतीय इतिहास में स्मारकों एवं कलात्मक अभिव्यक्तियों की संकल्पना तथा निर्माण पर भारतीय दर्शन एवं परंपरा के प्रभावों का परीक्षण कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- उत्तर की शुरुआत भारतीय दर्शन और परंपरा को संक्षिप्त रूप से समझाइये।
- भारतीय दर्शन और परंपरा ने विभिन्न अवस्थाओं में भारतीय स्मारकों एवं कलात्मक अभिव्यक्तियों को कैसे प्रभावित किया, इसका विस्तृत रूप से वर्णन कीजिये।
- संपूर्ण इतिहास में संबंधित स्थापत्य के उदाहरणों का उपयोग करते हुए उल्लेख कीजिये।
- तद्नुसार निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

भारतीय दर्शन भारतीय उपमहाद्वीप में विकसित दार्शनिक परंपराओं को संदर्भित करता है। इसमें हिंदू, बौद्ध और जैन दर्शन सहित अन्य दर्शन शामिल हैं।

भारत में दर्शन और धर्म के बीच अविभाज्य संबंध ने कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये एक शक्तिशाली प्रेरणा के रूप में कार्य किया है। यह प्रभाव प्रारंभिक बौद्ध स्मारकों से लेकर हिंदू मंदिरों की भव्यता तक, बाद में निर्मित मस्जिदों और चर्चों में भी धार्मिक संरचनाओं के वर्णक्रम में स्पष्ट है, ये सभी अपने-अपने धर्मों के अद्वितीय दार्शनिक आधार को दर्शाते हैं।

मुख्य भाग:

- **प्रारंभिक सभ्यताएँ:**
  - सिंधु घाटी सभ्यता (हड़प्पा) ने उन्नत शहरी नियोजन प्रदर्शित किया और स्वस्तिक जैसे प्रतीकों का इस्तेमाल किया, जो एक सुविकसित दार्शनिक एवं आध्यात्मिक प्रणाली को रेखांकित करता था, जिसने बाद में हिंदू धर्म को प्रभावित किया।
- **वैदिक काल:**
  - इस अवधि के दौरान स्थापित वर्ण व्यवस्था ने सामाजिक संरचनाओं को प्रभावित किया और शहरों के विकास को प्रभावित किया।
  - वैदिक ग्रंथों ने अनुष्ठानों और मान्यताओं के साथ-साथ दार्शनिक अवधारणाओं की खोज की। अग्नि एवं आकाश जैसे प्रकृति देवताओं की उपासना के कारण अग्नि वेदियों का निर्माण हुआ, जो आज भी महत्त्वपूर्ण है।
- **बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उदय:**
  - अजंता और एलोरा जैसे स्थानों में गुफा चित्र (Cave Painting) एवं मूर्तियाँ इन दार्शनिक शिक्षाओं को चित्रित करने के लिये शक्तिशाली साधन बन गईं।
  - बुद्ध के जीवन चक्र और जैन तीर्थंकरों की छवियाँ इसका उदाहरण हैं।
  - आजीवक, जैन और बौद्ध धर्म से संबंधित तपस्वियों को ध्यान के लिये स्थानों की आवश्यकता होती थी। लोमस ऋषि, अजंता या एलोरा जैसी चट्टानों को काटकर निर्मित गुफाएँ भिक्षुओं एवं संतों के लिये एकांत स्थान प्रदान करने के लिये बनाई गई थीं।
- **अशोक का शासनकाल:**
  - बौद्ध दर्शन ने अशोक के स्तंभों और स्तूपों के डिज़ाइन को काफी प्रभावित किया। स्तंभ का चक्र धर्म चक्र की गति का प्रतीक है, स्तूप का छत्र बौद्ध धर्म के तीन रत्नों का प्रतिनिधित्व करता है।
- **गुप्त काल और उसके बाद:**
  - हिंदू मंदिर स्थापत्य नागर, वेसर और द्रविड़ जैसी विशिष्ट शैलियों के साथ विकसित हुईं। हिंदू महाकाव्यों तथा पौराणिक कथाओं की कहानियों एवं पात्रों को चित्रित करने वाली मूर्तियाँ मंदिरों की शोभा बढ़ाती हैं।
  - खजुराहो मंदिर का क्षेत्र तीन त्रिकोणों में विभाजित है जो तीन लोकों या त्रिलोकीनाथ और पाँच ब्रह्मांडीय पदार्थों या पंचभूतेश्वर के हिंदू प्रतीकों को प्रतिबिंबित करने के लिये एक पंचकोण का निर्माण करते हैं।
- **पल्लव एवं चोल राजवंश:**
  - इन शासकों के अधीन मंदिर सामाजिक केंद्र बन गए। इन्होंने महाबलीपुरम के "रथ" मंदिरों और पल्लवों द्वारा कैलाशनाथर एवं वैकुंठपेरुमल मंदिरों जैसी शानदार संरचनाओं का निर्माण किया।
- **मध्यकाल:**
  - मुगल सम्राट अकबर धर्म का एकीकरण, दीन-ए-इलाही का प्रयास, दार्शनिक संश्लेषण का उदाहरण है। संस्कृतियों के इस सम्मिश्रण ने विभिन्न क्षेत्रों में नवीन कलात्मक अभिव्यक्तियों को जन्म दिया।
- **आधुनिक भारत:**
  - ब्रिटिश शासन के दौरान यूरोपीय स्थापत्य शैली ने लोकप्रियता हासिल की, एक अनूठी इंडो-सारसेनिक शैली उभरी, जिसमें इंडो-इस्लामिक और यूरोपीय प्रभावों का मिश्रण था।

निष्कर्ष:

भारतीय दर्शन ने देश के इतिहास में कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये निरंतर प्रेरणा स्रोत के रूप में कार्य किया है। सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर आधुनिक युग तक, इसने एक समृद्ध और विविध सांस्कृतिक परिदृश्य को पीछे छोड़ते हुए शहरों, स्मारकों एवं कला के डिज़ाइन को आकार दिया है।

Q36. भारत के सामाजिक सुधार आंदोलन के संदर्भ में वायकोम सत्याग्रह के महत्त्व पर चर्चा कीजिये। (150 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- वैकोम सत्याग्रह का परिचय लिखिये।
- इसमें शामिल प्रमुख हस्तियों का परिचय देते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिये।
- तद्नुसार निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

वैकोम सत्याग्रह, जिसका आयोजन वर्ष 1924-25 में त्रावणकोर रियासत (वर्तमान केरल) में हुआ था, भारत के सामाजिक सुधार आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसने अस्पृश्यता और जाति उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मुख्य भाग:

वैकोम सत्याग्रह का महत्त्व:

- **मंदिर प्रवेश आंदोलनों में अग्रणी:** यह हिंदू मंदिरों और आस-पास के जगहों में निवास करने वाली निचली जातियों के प्रवेश की मांग करने वाला पहला बड़ा जन आंदोलन था, जिसे जाति प्रदूषण (Caste Pollution) की धारणा के कारण प्रतिबंधित कर दिया गया था।
  - मंदिर में प्रवेश का मुद्दा पहली बार वर्ष 1917 में एझावा नेता टी. के. माधवन ने उठाया था और बाद में भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस ने अस्पृश्यता विरोधी मुद्दा उठाया।
  - इसने अंततः त्रावणकोर (वर्ष 1936) में मंदिर प्रवेश उद्घोषणा को जन्म दिया, जिससे निचली जातियों को मंदिरों में प्रवेश की अनुमति मिली और संपूर्ण भारत में बाद के मंदिर प्रवेश आंदोलनों के लिये एक व्यवस्था तैयार हुई।
- **चर्चित अहिंसक आंदोलन:** के. केलप्पन जैसी शख्सियतों के नेतृत्व में हुए सत्याग्रह में अहिंसक सविनय अवज्ञा और शांतिपूर्ण विरोध के गांधीवादी सिद्धांतों को नियोजित किया गया।
  - इससे आंदोलन को अधिक वैधता और गति मिली।
  - इसने राष्ट्रव्यापी ध्यान आकर्षित किया और भविष्य में होने वाले सामाजिक सुधार आंदोलनों को प्रेरित किया।
- **अंतर-सामुदायिक एकता:** यह आंदोलन विभिन्न धर्मों और जातियों के लोगों को एक साथ लेकर आया। जॉर्ज जोसेफ और समाज सुधारक ई.वी. रामासामी (पेरियार) जैसे ईसाई नेता ने सामाजिक असमानता के खिलाफ एकजुट संघर्ष का प्रदर्शन करते हुए भाग लिया।
  - जातिगत हिंदुओं के प्रति-आंदोलन और हिंसा का सामना करने के बावजूद, आंदोलन को 600 से अधिक दिनों तक जारी रखने के लिये यह एकजुटता महत्त्वपूर्ण थी।
- **सामाजिक सुधार को अग्रभूमि में लाना:** बढ़ते राष्ट्रवादी आंदोलन के बीच, वैकोम सत्याग्रह ने सामाजिक सुधार और अस्पृश्यता के उन्मूलन को राजनीतिक एजेंडे में सबसे आगे ला दिया।

निष्कर्ष:

वैकोम सत्याग्रह ने अग्रिम सुधारों के लिये उत्प्रेरक के रूप में कार्य किया और स्वतंत्र भारत में अस्पृश्यता के संवैधानिक उन्मूलन की नींव रखी।

Q37. आत्मनिर्भर भारत पर बल देने का दृष्टिकोण स्वदेशी आंदोलन से साम्यता रखता है। स्वदेशी आंदोलन के आर्थिक लक्ष्यों एवं रणनीतियों तथा आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के समकालीन प्रयासों के बीच तुलना एवं अंतर के बिंदुओं पर चर्चा कीजिये। (250 शब्द)

उत्तर :

हल करने का दृष्टिकोण:
- स्वदेशी आंदोलन और आत्मनिर्भर भारत अभियान का परिचय लिखिये।
- उनके आर्थिक लक्ष्यों का वर्णन कीजिये।
- उदाहरण के साथ उनकी रणनीतियों का उल्लेख कीजिये।
- तद्नुसार निष्कर्ष लिखिये।

परिचय:

आर्थिक आत्मनिर्भरता की खोज भारत के इतिहास में एक सतत् विषय है। स्वदेशी आंदोलन और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के समकालीन प्रयास, जैसे कि आत्मनिर्भर भारत अभियान, कुछ समान आर्थिक लक्ष्य साझा करते हैं, लेकिन उनके ऐतिहासिक संदर्भ तथा रणनीतिक तरीकों में उल्लेखनीय अंतर भी हैं।

मुख्य भाग:

आर्थिक लक्ष्य:

- **स्वदेशी आंदोलन:** इसका मुख्य उद्देश्य भारत पर ब्रिटिश आर्थिक पकड़ को कमज़ोर करना था।
  - इसमें ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी उद्योगों को बढ़ावा देना और पारंपरिक शिल्प को पुनर्जीवित करना शामिल था।
  - यह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक हिस्से के रूप में औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध विरोध का एक स्वरूप था।
- **आत्मनिर्भर भारत:** यह भारत को आत्मनिर्भर और वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्द्धी राष्ट्र बनाने पर ध्यान केंद्रित करता है।

- इसका उद्देश्य आयात पर निर्भरता को कम करना, घरेलू विनिर्माण को बढ़ावा देना, वैश्विक आर्थिक आघातों का विरोध करना और प्रमुख क्षेत्रों को मज़बूत करना है।
- यह आर्थिक सुरक्षा और विकास की इच्छा से प्रेरित है।

रणनीतियाँ:

- **स्वदेशी आंदोलन:**
  - ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार, जैसे- ब्रिटिश निर्मित वस्त्रों को जलाना और ब्रिटिश वस्त्रों का बहिष्कार, जैसा कि असहयोग आंदोलन (वर्ष 1920-1922) के दौरान प्रदर्शित किया गया था।
  - स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देना, जैसे- खादी को बढ़ावा देना और महात्मा गांधी द्वारा ऑल इंडिया स्पिनर्स एसोसिएशन की स्थापना, ताकि भारतीय निर्मित वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहित किया जा सके।
  - स्वदेशी उद्योगों, विशेष रूप से वस्त्रों को पुनर्जीवित करना और बढ़ावा देना, जैसे- ब्रिटिश मिल मालिकों द्वारा कपड़ा श्रमिकों के शोषण के विरोध में वर्ष 1917 में अहमदाबाद मिल हड़ताल।
  - आत्मनिर्भरता पर ज़ोर, जैसे- बाल गंगाधर तिलक द्वारा "स्वदेशी आंदोलन" को बढ़ावा देना, जिसमें स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने का समर्थन किया गया था।
- **आत्मनिर्भर भारत:**
  - आयात प्रतिस्थापन, जैसे कि आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने और आयात निर्भरता को कम करने के लिये कोविड-19 महामारी के दौरान घोषित आत्मनिर्भर भारत पैकेज।
  - प्रोत्साहन और नीतिगत सुधार, उदाहरण के लिये कॉर्पोरेट टैक्स रेट्स में कमी एवं निर्यात को बढ़ावा देने के लिये निर्यातित उत्पादों पर शुल्क तथा करों की छूट योजना की शुरुआत आदि।
  - आपूर्ति शृंखलाओं का विकास, उदाहरण के लिये आपूर्ति शृंखलाओं को सुव्यवस्थित करने और रसद लागत को कम करने, स्थानीय सोर्सिंग को बढ़ावा देने तथा वैश्विक आपूर्ति शृंखलाओं पर निर्भरता को कम करने के लिये राष्ट्रीय रसद नीति।
  - कौशल विकास और नवाचार, उदाहरण के लिये- उद्यमिता एवं नवाचार को बढ़ावा देने के लिये स्टार्टअप इंडिया पहल तथा स्कूलों व विश्वविद्यालयों में नवाचार एवं उद्यमिता संस्कृति को बढ़ावा देने के लिये अटल नवाचार मिशन।

निष्कर्ष:

स्वदेशी आंदोलन और आत्मनिर्भर भारत, जिसमें तकरीबन एक शताब्दी का अंतराल है, लेकिन दोनों ही आंदोलन "भारत पहले (India First)" तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के मूल आदर्श को साझा करते हैं। हालाँकि उनके तरीके अलग-अलग हैं, लेकिन दोनों ही आंदोलन घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देने तथा बाहरी ताकतों पर निर्भरता कम करने के महत्त्व पर प्रकाश डालते हैं।